॥ ओ३म् ॥

सत्यधर्मविचार ॥

अर्थात्—

धर्मचर्चाब्रह्मविचार

चांदापुर

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और मौलवी मुहम्मदक़ासम साहब और पादरी स्काट साहब के बीच हुआ था।

अजमेर

वैदिकयन्त्रालय में मुद्रित हुआ।

संवत् १९६६ वि०

आठवींवार
२००० प्रति.
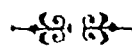
मूल्य -)
डाकव्यय)॥

ओ३म् खम्ब्रह्म ॥

अथ सत्यधर्म्मविचार ॥

मेला चांदापुर.

धर्मचर्चा मेला ब्रह्मविचार चांदापुर * कि जिसमें बड़े २ विद्वान् † आर्य्यों, ईसाइयों और मुसल्मानों की ओर से एक सत्य के निर्णय के लिये इकट्ठे हुए थे, सज्जन पाठकगणों के हितार्थ मुद्रित किया जाता है कि जिस से प्रत्येक मतों का अभिप्राय सब पर प्रकाशित होजावे । सब सज्जनों को किसी मत के क्यों न हों उचित है कि पक्षपातरहित होकर इसको सुहृद्भाव से देखें ।

विदित हो कि यह मेला दो दिन रहा, मेले के आरम्भ से पूर्व कई लोगों ने स्वामीजी के समीप जाकर कहा कि आर्य्य और मुसल्मान मिल के ईसाइयों का खण्डन करें तो अच्छा है इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह मेला सत्य और असत्य के निर्णय के लिये किया गया है इसलिये हम तीनों को उचित है कि पक्षपात छोड़कर प्रीतिपूर्वक सत्य का निश्चय करें, किसी से विरोध करना कदापि योग्य नहीं ।

इसके पश्चात् विचार का समय नियत किया गया, पादरियों ने कहा कि हम दो दिन से अधिक नहीं ठहर सकते और यही विज्ञापन में भी छापा गया था । इस पर स्वामीजी ने कहा कि हम इस प्रतिज्ञा पर आये थे कि मेला कम से कम पांच और अधिक से अधिक आठ दिन तक रहेगा । क्योंकि इतने दिनों में सब मतों का अभिप्राय अच्छे प्रकार ज्ञात हो सकता है, जब इस पर वे लोग प्रसन्न न हुए तब मुन्शी इन्द्र-

---

* यहां यह मेला मुन्शी प्यारेलाल साहब की ओर से प्रतिवर्ष हुआ करता है ।

† इस धर्मचर्चा में आर्य्यों की ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और मुंशी इन्द्रमणिजी, ईसाइयों की ओर से पादरी स्काट साहब, पादरी नोबिल साहब, पादरी पार्कर साहब और पादरी जांसन साहब और मुसल्मानों की ओर से मौलवी मोहम्मद क़ासम साहब, सैय्यद अब्दुल मंसूर साहब विचार के लिये आये थे ।

मणिजी ने कहा कि स्वामीजी ! आप निश्चिन्त रहें सच्चा मत एक दिन में प्रकट हो जावेगा । फिर निम्नलिखित पांच प्रश्नों पर विचार करना सबने स्वीकार किया ।

पहिले दिन की सभा ।

मुन्शी प्यारेलाल साहब ने खड़े होकर सब से पहिले कहा—

प्रथम ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिये कि जो सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी है । हम लोगों के बड़े भाग्य हैं कि उसने हम सब को ऐसे राजप्रबन्ध समय में उत्पन्न किया कि जिस में सब लोग निर्विघ्नता से निर्भय होकर मतमतान्तरों का विचार कर सकते हैं । धन्य है इस आज के दिन को और बड़े भाग्य हैं इस भूमि के कि ऐसे २ सज्जन पुरुष और ऐसे २ विद्वान् मतमतान्तरों के जाननेवाले यहां सुशोभित हुए हैं । आशा है कि सब विद्वान् अपने २ मतों की वार्त्ताओं को कोमल वाणी से कहेंगे कि जिनसे सत्य और असत्य का निर्णय होकर मनुष्यों की सत्य मार्ग में प्रवृत्ति हो जावेगी ।

इस के पश्चात् जब मुसल्मानों और ईसाइयों की ओर से पांच २ मनुष्य और आर्य्यों की ओर से स्वामीजी और मुन्शी इन्द्रमणिजी दोही विचार के लिये नियत किये गये तब मौलवियों और पादरियों ने हठ किया कि आर्य्यों की ओर से भी पांच मनुष्य होने चाहियें । इस पर स्वामीजी ने कहा कि आर्य्यों की ओर से हम दो ही बहुत हैं तब मौलवियों ने पण्डित लक्ष्मण शास्त्रीजी का नाम अपने ही आप पादरियों से लिखवाना चाहा तब स्वामीजी ने उनसे तो यह कहा कि आप लोगों को अपनी २ ओर के मनुष्यों के लिखवाने का अधिकार है हमारी ओर का कुछ नहीं और पण्डितजी से यह कहा कि आप नहीं जानते ये लोग हमारे और तुम्हारे बीच विरोध कराके आप तमाशा देखना चाहते हैं इस बात के कहने पर भी एक मौलवी ने पण्डितजी का हाथ पकड़ के उन से कहा कि तुम भी अपना नाम लिखवा दो इनके कहने से क्या होता है, तिसपर स्वामीजी ने कहा कि अच्छा जो सब आर्य्य लोगों की सम्मति हो तो इनका भी नाम लिखवा दो नहीं तो केवल आप लोगों के कहने से इनका नाम नहीं लिखा जावेगा, फिर एक मौलवी साहब उठकर बोले कि सब हिन्दुओं से पूछा जावे कि इन दोनों के नाम लिखाने में सब की सम्मति है वा नहीं । इस पर स्वामीजी ने कहा कि जैसे आपको सिवाय फ़िर्के सुन्नत जमात के अहलशिया आदि फ़िर्कों ने सम्मति कर के नहीं बिठलाया और जैसे कि पादरी साहब को रोमेन कैथोलिक फ़िर्कों ने नियत नहीं

किया। ऐसे ही आर्य्य लोगों में भी बहुतों की हमारे बिठलाने में सम्मति और बहुतों की असम्मति होगी परन्तु आप लोगों को हमारे बीच गड़बड़ मचाने का कुछ अधिकार नहीं है, मुन्शी इन्द्रमणिजी ने कहा कि हम सब आर्य्य लोग वेदादि शास्त्रों को मानते हैं और पण्डितजी भी इन्हीं को मानते हैं जो किसी का मत आर्य लोगों से वेदादि शास्त्रों के विरुद्ध हो तो चौथा पथ नियत करके भले ही बिठला दीजियेगा।

इन बातों से मौलवियों का यह अभिप्राय था कि ये लोग आपस में झगड़ें तो हम तमाशा देखें। पण्डितजी का नाम लिखना आर्य लोगों ने योग्य न समझा। फिर मौलवी लोग नमाज़ पढ़ने को चले गये और जब लौटकर आये तब उन में से मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब ने कहा कि प्रथम मैं एक घण्टे तक उन प्रश्नों के सिवाय और कुछ अपने मत के अनुसार कहना चाहता हूं उस में जो किसी की कुछ शंका होगी तो उसका मैं समाधान करूंगा इसको सब ने स्वीकार किया। मौलवी साहब के कथन का तात्पर्य यह है:—

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब॥

परमेश्वर की स्तुति के पश्चात् यह कहा कि जिस २ समय में जो२ हाकिम हो उसी की सेवा करनी उचित है जैसे कि इस समय जो गवर्नर है उसी की सेवा करते और उसी की आज्ञा मानते हैं और जिसकी कि आज्ञापालन का समय व्यतीत होगया न कोई उस की सेवा करता है और न उस की आज्ञा को मानता है और जैसे जब कोई क़ानून व्यर्थ होजाता है तो उस के अनुसार कोई नहीं चलता परन्तु जो क़ानून उसकी जगह नियत किया जाता है उसी के अनुसार सब को चलना होता है तो इन्हीं दृष्टान्तों के समान जो २ अवतार और पैग़म्बर पूर्व समय में थे और जो २ पुस्तकें तौरेत ज़बूर बाइबिल उनके समय में उतरी थीं अब उनके अनुसार न चलना चाहिये इस समय के सब से पिछले पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद साहब हैं इसलिये उनको पैग़म्बर मानना चाहिये और जो ईश्वरवाक्य अर्थात् क़ुरान उन के समय में उतरा है उस पर विश्वास करना चाहिये और हम श्रीराम और श्रीकृष्ण आदि और ईसामसीह की निन्दा नहीं करते क्योंकि वे अपने २ समय में अवतार और पैग़म्बर थे परन्तु इस समय तो हज़रत मुहम्मद साहब का ही हुकुम चलता है दूसरे का नहीं। जो कोई हमारे मज़हब वा क़ुरानशरीफ़ वा हज़रत मुहम्मद साहब को बुरा कहेगा वह मारे जाने के योग्य है॥

पादरी नोबिल साहब.

मुहम्मद साहब के पैगम्बर और कुरान के ईश्वरीय वाक्य होने में सन्देह है क्योंकि कुरान में जो २ बातें लिखी हैं सो २ बाइबिल की हैं इसलिये कुरान अलग आसमानी पुस्तक नहीं हो सकता और हज़रत ईसामसीह के अवतार होने में कुछ सन्देह नहीं क्योंकि उसके व्याख्यान से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह सत्यमार्ग बतलाने वाला था। केवल उस के व्याख्यान से ही मनुष्य मुक्ति पा सकता है और उसने चमत्कार भी दिखलाये थे।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

हम हज़रत ईसा को अवतार तो मानते हैं और बाइबिल को आसमानी पुस्तक भी मानते हैं परन्तु ईसाइयों ने उसमें बहुत कुछ घटत बढ़त करदी है, इसलिये यह वही मूल नहीं है और जो कि उस का कुरान ने खण्डन भी कर दिया है इसलिये वह विश्वास के योग्य नहीं रही और हमारे हज़रत पैगम्बर साहब का अवतार सब से पिछला है इसलिये हमारा मत सच्चा है।

फिर और मौलवियों ने बाइबिल में से एक आयत पादरी साहब को दिखलाई और कहा कि देखिये आप ही लोगों ने लिखा है कि इस आयत का पता नहीं लगता।

पादरी नोबिल साहब.

जिस मनुष्य ने यह लिखा है वह सत्यवादी था जो उसने लेखक भूल को प्रसिद्ध कर दिया तो कुछ बुरा नहीं किया और हम लोग सत्य को चाहते हैं असत्य को नहीं इसलिये हमारा मत सत्य है।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

यह तो ठीक है कि कुछ बुरा नहीं किया परन्तु जब कि किसी पुस्तक में वा दस्तावेज़ में एक बात भी झूठ लिखी हुई विदित होजावे तो वह पुस्तक कदाचित् माननीय नहीं रहता और न वह दस्तावेज़ ही अदालत में स्वीकार हो सकती है।

पादरी नोबिल साहब.

क्या कुरान में लेखकदोष नहीं हो सकता इस बात पर हठ करना अच्छा नहीं और जो हम सत्य ही को मानते हैं और सत्य ही का खोज करते हैं इस कारण उस लेखक

भूल को हमने स्वीकार कर लिया और तुम्हारे कुरान में बहुत घटत बढ़त हुई जिसके प्रमाण में एक मौलवी ईसाई ने अरबी भाषा में बहुत कुछ कहा और सूतों के प्रमाण दिये।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

आप बड़े सत्य के खोजी हैं! (मुख बनाकर) जो आप सत्य ही को स्वीकार करते हैं तो तीन ईश्वर क्यों मानते हो ?।

पादरी नोबिल साहब.

हम तीन ईश्वर नहीं मानते वे तीनों एक ही हैं अर्थात् केवल एक ईश्वर से ही प्रयोजन है। ईसामसीह में मनुष्यता और ईश्वरता दोनों थीं इस कारण वह दोनों व्यवहारों को करता है अर्थात् मनुष्य के आत्मा से मनुष्यों का व्यवहार और ईश्वर के आत्मा से ईश्वर का व्यवहार अर्थात् चमत्कार दिखलाना।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

वाह वाह! एक घरमें दो तलवार क्योंकर रह सकती हैं यह कहना पादरी साहब का अत्यन्त मिथ्या है उसने तो कहीं नहीं कहा कि मैं ईश्वर हूं तुम हठ से उसको ईश्वर बनाते हो।

पादरी नोबिल साहब.

एक आयत अंजील की पढ़ी और कहा कि यह एक आयत है जिसमें मसीह ने अपने आप को ईश्वर कहा है और कई एक चमत्कार भी दिखलाये हैं इससे उसके ईश्वर होने में कोई संदेह नहीं हो सकता।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

जो वह ईश्वर था तो अपने आप को फांसी से क्यों न बचा सका!।

एक हिन्दुस्तानी पादरी साहब.

कुरान में कई एक आयतों का परस्पर विरोध दिखलाया और कहा कि हुकुम का खण्डन हो सकता है समाचार का नहीं हो सकता सो आप के कुरान में समाचारों का खण्डन है पहिले बैतूलमुक़द्दस की ओर शिर नमाते थे फिर काबे की ओर नमाने लगे और कई आयतों का अर्थ भी सुनाया और कहा कि ईसामसीह पर विश्वास लाये विना किसी की मुक्ति नहीं हो सकती और तुम्हारे कुरान में

बाइबिल का और ईसामसीह का मानना लिखा है तुम लोग क्यों नहीं मानते हो ?। ऐसी ही बातों के होते २ सन्ध्या होगई।

दूसरे दिन की सभा।

प्रातःकाल के साढ़े सात बजे सब लोग आये और वे पांच प्रश्न कि जो स्वीकार होचुके थे पढ़े गये। पांच प्रश्न ये हैं:—

१—सृष्टि को परमेश्वर ने किस चीज़ से किस समय और किसलिये बनाया?.

२—ईश्वर सब में व्यापक है वा नहीं ?.

३—ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ?.

४—वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण है ?.

५—मुक्ति क्या है और किस प्रकार मिल सकती है ?.

इसके पश्चात् कुछ देर तक यह बात आपस में होती रही कि एक दूसरे को कहता था कि पहिले वह वर्णन करे। तदनन्तर पादरी स्काट साहब ने पहिले प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ किया और यह भी कहा कि यद्यपि यह प्रश्न किसी काम का नहीं, मेरी समझ में ऐसे प्रश्न का उत्तर देना व्यर्थ है। परन्तु जब कि सब की सम्मति है तो मैं इस का उत्तर देता हूं:—

पादरी स्काट साहब.

यद्यपि हम नहीं जानते कि ईश्वर ने यह संसार किस चीज़ से बनाया है परन्तु इतना हम जान सकते हैं कि अभाव से भाव में लाया है क्योंकि पहिले सिवाय ईश्वर के दूसरा पदार्थ कुछ न था उस ने अपने हुकुम से सृष्टि को रचा है। यद्यपि यह भी हम नहीं जान सकते कि उस ने कब इस संसार को रचा परन्तु उस का आदि तो है वर्षों की गणना हम को नहीं जान पड़ती और न सिवाय ईश्वर के कोई जान सकता है इसलिये इस बात पर अधिक कहना ठीक नहीं।

ईश्वर ने किसलिये इस जगत् को रचा, यद्यपि इसका भी उत्तर हम लोग ठीक २ नहीं जान सकते परन्तु इतना हम जानते हैं संसार के सुख के लिये ईश्वर ने यह सृष्टि की है, कि जिसमें हम लोग सुख पावें और सब प्रकार के आनन्द करें।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

उसने अपने शरीर से प्रकट अर्थात् उत्पन्न किया, उससे हम अलग नहीं, जो

अलग होते तो उस की प्रभुता में न होते। कब से यह संसार बना यह कहना व्यर्थ है, क्योंकि हम को रोटी खाने से काम है, न यह कि रोटी कब बनी है।

यह जगत् सृष्टि के लिये रचा गया है, क्योंकि सब पदार्थ मनुष्य के लिये ईश्वर ने रचे हैं और हम को अपनी भक्ति के लिये ईश्वर ने रचा है! देखो पृथिवी हमारे लिये है, हम पृथिवी के लिये नहीं, क्योंकि जो हम न हों तो पृथिवी की कुछ हानि नहीं, परन्तु पृथिवी के न होने से हमारी बड़ी हानि होती है ऐसे ही जल, वायु, अग्नि आदि सब पदार्थ मनुष्य के लिये रचे गये हैं मनुष्य सब सृष्टि में श्रेष्ठ है, उसको बुद्धि भी इसी श्रेष्ठता की परीक्षा को दी है अर्थात् मनुष्य को अपनी भक्ति के लिये और इस जगत् को मनुष्य के लिये ईश्वर ने रचा है।

स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी।

पहिले मेरी सब मुसलमानों और ईसाइयों और सुननेवालों से यह प्रार्थना है कि यह मेला केवल सत्य के निर्णय के लिये किया गया है और यह ही मेला करने वालों का प्रयोजन है कि देखें सब मतों में कौनसा मत सत्य है, जिस को सत्य समझें उसी को अंगीकार करें, इसलिये यहां हार और जीत की अभिलाषा किसी को न करनी चाहिये क्योंकि सज्जनों का यह ही मत होना चाहिये कि सत्य की सर्वदा जीत और असत्य की सर्वदा हार होती रहे। परन्तु जैसे मौलवी लोग कहते हैं कि पादरीसाहब ने यह बात झूठ कही, ऐसे ही ईसाई कहते हैं कि मौलवीसाहब ने यह बात झूठ कही, ऐसी वार्ता करना उचित नहीं। विद्वानों के बीच यह नियम होना चाहिये कि अपने २ ज्ञान और विद्या के अनुसार सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन कोमल वाणी के साथ करें कि जिससे सब लोग प्रीति से मिलकर सत्य का प्रकाश करें। एक दूसरे की निन्दा करना, बुरे २ वचनों से बोलना, द्वेष से कहना कि यह हारा और मैं जीता ऐसा नियम कदाचित् न होना चाहिये। सब प्रकार पक्षपात छोड़कर सत्यभाषण करना सब को उचित है और एक दूसरे से विरोध वाद करना यह अविद्वानों का स्वभाव है विद्वानों का नहीं, मेरे इस कहने का यह प्रयोजन है कि कोई इस मेले में अथवा और कहीं कठोर वचन का भाषण न करें।

अब मैं इस पहिले प्रश्न का उत्तर कि "ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से और किस समय और किसलिये रचा है" अपनी छोटीसी बुद्धि और विद्या के अनुसार देता हूं।

परमात्मा ने सब संसार को प्रकृति से अर्थात् जिस को अव्यक्त अव्याकृत और परमाणु नामों से कहते हैं रचा है, सो यह ही जगत् का उपादान कारण है, जिस को वेदादि शास्त्रों में नित्य करके निर्णय किया है और यह सनातन है, जैसे ईश्वर अनादि है वैसे ही सब जगत् का कारण भी अनादि है, जैसे ईश्वर का आदि और अन्त नहीं वैसे ही इस जगत् के कारण का भी आदि और अन्त नहीं है। जितने इस जगत् में पदार्थ दीखते हैं उन के कारण से एक परमाणु भी अधिक वा न्यून कभी नहीं होता। जब ईश्वर इस जगत् को रचता है तब कारण से कार्य रचता है। सो जैसा कि यह कार्यजगत् दीखता है वैसा ही इस का कारण है। सूक्ष्म द्रव्यों को मिलाकर स्थूल द्रव्यों को रचता है तब स्थूल द्रव्य होकर देखने और व्यवहार के योग्य होते हैं। और यह जो अनेक प्रकार का जगत् दीखता है उस को इसी कारण से ईश्वर ने रचा है, जब प्रलय करता है तब इस स्थूल जगत् के पदार्थों के परमाणुओं को पृथक् २ कर देता है क्योंकि जो २ स्थूल से सूक्ष्म होता है वह आंखों से देखने में नहीं आता तब बालबुद्धि लोग ऐसा समझते हैं कि वह द्रव्य नहीं रहा परन्तु वह सूक्ष्म होकर आकाश में ही रहता है, क्योंकि कारण का नाश कभी नहीं होता और नाश अदर्शन को कहते हैं अर्थात् वह देखने में न आवे। जब एक २ परमाणु पृथक् २ होजाते हैं तब उनका दर्शन * नहीं होता फिर जब वे ही परमाणु मिलकर स्थूल द्रव्य होते है तब दृष्टि में आते हैं यह नाश और उत्पत्ति की व्यवस्था ईश्वर सदा से करता आया है और ऐसे ही सदा करता जायगा, इसकी संख्या नहीं कि कितनी वार ईश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की

* जब कोई वस्तु अत्यन्त छोटी होजाती है तो फिर उसे और छोटा करना असम्भव है। जो किसी वस्तु के टुकड़े करते २ उस को इतना छोटा कर दें कि फिर उस के टुकड़े होना असम्भव होजावे तो उस को परमाणु कहते हैं जितनी वस्तु संसार में हैं वे सब परमाणु से बनती हैं। जब किसी पत्थर को तोड़ डालते हैं और उस के अत्यन्त छोटे २ टुकड़ों को पृथक् २ कर देते हैं तो वे परमाणु कि जिन के इकट्ठे होने से फिर पत्थर बनता है सदा किसी न किसी स्वरूप के बने रहते हैं। एक परमाणु का भी इस संसार में से अभाव नहीं होता केवल स्वरूप और गुणों में भेद हुआ करता है जब मोम की बत्ती को जलाते हैं तो देखने में यह जान पड़ता है कि थोड़ी देर में सब बत्ती नहीं रहती, न जाने कि क्या होगई परन्तु वे परमाणु जितने बत्ती मे थे और ही रूप के वायु के सदृश हो जाते हैं, उन में के एक परमाणु का भी अभाव कदाचित् नहीं होता ॥

और कितनी वार कर सकेगा, इस बात को कोई नहीं कह सकता। अब इस विषय को जानना चाहिये कि जो लोग नास्ति अर्थात् अभाव से अस्ति अर्थात् भाव मानते हैं और शब्द से जगत् की उत्पत्ति जानते हैं उन का कहना किसी प्रकार से ठीक नहीं हो सकता क्योंकि अभाव से भाव का होना सर्वथा असम्भव है। जैसे कोई कहे कि बन्ध्या के पुत्र का विवाह मैंने आंख से देखा है, तो जो उस के पुत्र होता तो बन्ध्या क्यों कहलाती ? फिर उस के पुत्र का अभाव होने से उस के पुत्र का विवाह कब हो सकता है और जैसे कोई कहे कि मैं किसी स्थान में नहीं था और यहां आया हूं अथवा सर्प बिल में न था और निकल भी आया, तो ऐसी वार्ता विद्वानों की नहीं होती इस में कोई प्रमाण नहीं, क्योंकि जो वस्तु है ही नहीं फिर वह क्योंकर हो सकता है जैसे कि हम लोग अपने २ स्थानों में न होते तो चांदापुर में कभी न आ सकते, देखो शास्त्र में लिखा है कि:—

नासत आत्मलाभः। न सत आत्महानम् ॥

अर्थात् जो है सो आगे को होता है और जो नहीं है वह कभी नहीं हो सकता। इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि विना भाव के भाव कभी नहीं हो सकता, क्योंकि इस जगत् में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है कि जिस का कारण कोई नहीं, इससे यह सिद्ध हुआ कि भाव से भाव अर्थात् अस्ति से अस्ति होती है नास्ति से अस्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती, यह "वदतो व्याघातः" अर्थात् अपनी बात को आप ही काटने के सदृश वात है। पहिले किसी वस्तु का अन्यथाभाव कहकर फिर यह कहना कि उस का भाव होगया पूर्वापर विरोध है। इस को कोई विद्वान् नहीं मान सकता और न किसी प्रमाण से ही सिद्ध कर सकता है कि विना कारण के कोई कार्य हो-सके, इसलिये अभाव से भाव अर्थात् नास्ति से वा हुकुम से जगत् की उत्पत्ति का होना सर्वथा असम्भव है, इस से यह ही जानना चाहिये कि ईश्वर ने जगत् के अनादि उपादान कारण से ही सब संसार को रचा है, अन्यथा नहीं ॥

यहां दो प्रकार का विचार स्थित होता है एक यह कि जो जगत् का कारण ईश्वर हो तो ईश्वर ही सारे जगत् का रूप हुआ, तो ज्ञान, सुख, दुःख, जन्म, मरण, हानि, लाभ, नरक, स्वर्ग, क्षुधा, तृषा, ज्वर आदि रोग, बन्ध और मोक्ष सब ईश्वर में ही घटते हैं फिर कुत्ता, विल्ली, चोर, दुष्ट आदि सब ईश्वर ही बन गया ॥

दूसरा यह कि जो सामग्री मानें तो ईश्वर कारीगर के समान होता है ॥

तो उत्तर यह है कि कारण तीन प्रकार का होता है.—

एक उपादान, कि जिस को ग्रहण करके पदार्थ को बनावें, जैसे मट्टी लेकर घड़ा और सोना लेकर गहना और रुई लेकर कपड़ा बनाया जाय।

दूसरा निमित्त, जैसे कुम्हार अपनी विद्या और सामर्थ्य के साथ घड़े को बनाता है।

तीसरा साधारण, जैसे चाक आदि साधन-और दिशा, काल इत्यादि ।

अब जो ईश्वर को जगत् का उपादान कारण मानें तो ईश्वर ही जगत्रूप बनता है, क्योंकि मट्टी से घड़ा अलग नहीं हो सकता और जो निमित्त मानें तो जैसे कुम्हार मट्टी के विना घड़ा नहीं बना सकता और जो साधारण मानें जैसे मट्टी से अपने आप विना कुम्हार घड़ा नहीं बन सकता, इन दोनों व्यवस्थाओं में वह पराधीन वा जड़ ठहरता है, इसलिये जो यह कहते हैं कि ईश्वर जगत्रूप बन गया है तो उनके कहने से चोर आदि होने का दोष ईश्वर में आता है इससे ऐसी व्यवस्था माननी चाहिये कि जगत् का कारण अनादि है और नाना प्रकार के जगत् को बनानेवाला परमात्मा है और इसी प्रकार जीव भी अपने स्वरूप से अनादि हैं और स्थूल कार्य जगत् तथा जीवों के कर्म नित्यप्रवाह से अनादि हैं, ऐसे माने विना किसी प्रकार से निर्वाह नहीं हो सकता ।

अब यह कि ईश्वर ने किस समय जगत् को बनाया है अर्थात् संसार को बने हुए कितने वर्ष होगये इस का उत्तर दिया जाता है:—

सुनो भाइयो! इस प्रश्न का हम लोग तो उत्तर दे सकते हैं आप लोग नहीं दे सकते, क्योंकि जब आप लोगों के मतों की कोई अठारहसौ वर्ष से, कोई तेरहसौ वर्ष से और कोई पांचसौ वर्ष से उत्पत्ति कहता है तो फिर आप लोगों के मत में जगत् के इतिहास के वर्षों का लेख किसी प्रकार नहीं हो सकता और हम आर्य लोग सदा से कि जब से यह सृष्टि हुई बराबर विद्वान् होते चले आये हैं। देखो! इस देश से और सब देशों में विद्या गई है, इस बात में सब देशवालों के इतिहासों का प्रमाण है कि आर्यावर्त्त देश से मिस्र देश में और वहां से यूनान और यूनान से योरोप आदि में विद्या फैली है। इसलिये इस का इतिहास किसी दूसरे मत में नहीं हो सकता ॥

देखो! हम आर्य लोग संसार की उत्पत्ति और प्रलय के विषय में वेद आदि शास्त्रों की रीति से सदा से जानते हैं कि हज़ार चतुर्युगियों का एक ब्राह्म दिन और इतने ही युगों की एक ब्राह्म रात्रि होती है अर्थात् जगत् की उत्पत्ति हो के जबतक कि वर्त्तमान

होता है उस का नाम ब्राह्म दिन है और प्रलय हो के जबतक हज़ार चतुर्युगीपर्य्यन्त उत्पत्ति नहीं होती उस का नाम ब्राह्म रात्री है। एक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते और एक मन्वन्तर ७१ चतुर्युगियों का होता है। सो इस समय सातवां वैवस्वत मन्वन्तर वर्त्तमान हो रहा है और इससे पहिले ये छः मन्वन्तर बीत चुके हैं:—

स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तमि, तामस, रैवत और चाक्षुष ॥ अर्थात् १९६०८५२९७६ वर्षों का भोग हो चुका है और अब २३३३२२७०२४ वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाक़ी रहे हैं। सो हमारे देश के इतिहासों मे यथार्थ क्रमसे सब बातें लिखी हैं और ज्योतिष्शास्त्र में भी मितीवार प्रति संवत् घटाते बढ़ाते रहे हैं और ज्योतिष् की रीति से जो वर्षपत्र बनता है उस में भी यथावत् सब को क्रम से लिखते चले आते हैं अर्थात् एक २ वर्ष घटाते और एक २ वर्ष भोगने में आजतक बढ़ाते आये हैं, इस बात में सब आर्य्यावर्त्त देश के इतिहास एक हैं, किसी में कुछ विरोध नहीं ॥

फिर जब कि जैन मतवाले और मुसलमान इस देश के इतिहासों को नष्ट करने लगे तब आर्य्य लोगों ने सृष्टि के इतिहास को कण्ठ कर लिया, सो बालक से लेके वृद्ध तक नित्यप्रति उच्चारण करते हैं कि जिस को संकल्प कहते है और वह यह है:—

ओं तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे आर्य्यावर्त्तान्तरैकदेशेऽमुकनगरेऽमुकसंवत्सरायनर्तुमासपक्षदिननक्षत्रलग्नमुहूर्तेऽत्रेदं कार्यं कृत क्रियते वा ॥

जो इसको ही विचार ले तो इस से सृष्टि के वर्षों की गणना बराबर जान पड़ती है ॥

जो कोई यह कहे कि हम इस बात को नहीं मान सकते तो उसका उत्तर यह है कि जो परम्परा से मिती वार दिन चढाते चले आते है और जब कि इतिहासों और ज्योतिष् शास्त्रों में भी इसी प्रकार लिखा है तो फिर इस को मिथ्या कोई नही कह सकता जैसे कि बहीखाते में प्रतिदिन मिती वार लिखते हैं और उस को कोई झूठ नहीं कह सकता और जो यह कहता है उस से भी पूछना चाहिये कि तुम्हारे मत में सृष्टि की उत्पत्ति को कितने वर्ष हुए है तब वह या तो छः हज़ार या सात हज़ार या आठ हजार वर्ष बतलावेगा तो वह भी अपने पुस्तकों के अनुसार कहता है तो इसी प्रकार उस को भी कोई नहीं मानेगा क्योंकि यह पुस्तक की बात है ॥

और देखो भूगर्भविद्या से जो देखा जाता है तो उससे भी यह ही गणना ठीक २ आती है ॥

इसलिये हम लोगों के मत में तो जगत् के वर्षों की गिनती बन सकती है और किसी के कदाचित् नहीं, इसलिये यह व्यवस्था सृष्टि की उत्पत्ति के वर्षों की सब को ठीक माननी उचित है ॥

अब यह कि ईश्वरने किसलिये सृष्टिको उत्पन्न किया इसका उत्तर दिया जाता है–

जीव और जगत् का कारण स्वरूप से अनादि और जीव के कर्म तथा कार्य जगत् नित्यप्रवाह से अनादि है, जब प्रलय होता है तब जीवों के कुछ कर्म शेष रह जाते हैं तो उनके भोग कराने के लिये और फल देनेके लिये ईश्वर में सृष्टि को रचाता है और अपने पक्षपातरहित न्याय को प्रकाशित करता है, ईश्वर में जो ज्ञान, बल, दया आदि और रचने की अत्यन्त शक्ति है उन के सफल करने के लिये उसने सृष्टि रचा है– जैसे आंख देखने के लिये और कान सुनने के लिये है वैसे ही रचनाशक्ति रचने के लिये है। सो अपनी सामर्थ्य की सफलता करने के लिये ईश्वर ने इस जगत् को रचा है कि सब लोग सब पदार्थों से सुख पावें। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये जीवों के नेत्र आदि साधन भी रचे हैं इसी प्रकार सृष्टि के रचने में और भी अनेक प्रयोजन है कि जो समय कम रहने से अब नहीं कहे जा सकते, विद्वान् लोग आप जानलेंगे ॥

पादरी स्काट साहब.

जिस की सीमा होती है वह अनादि नहीं हो सकता, जगत् सीमानिरूपण है इसलिये वह अनादि नहीं हो सकता। कोई पदार्थ अपने आप को नहीं रच सकता, परन्तु ईश्वर ने जगत् को अपनी सामर्थ्य से रचा है। कोई नहीं जानता कि ईश्वर ने किस पदार्थ से रचा है और पण्डितजी ने भी नहीं बताया कि किस पदार्थ से जगत् को रचा ॥

मौलवी मुहम्मद कासम साहब.

जब कि सब पदार्थ सदा से हैं तो ईश्वर को मानना व्यर्थ है। कोई उत्पत्ति का समय नहीं कह सकता ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी.

(पादरी साहब के उत्तर में)

पादरी साहब मेरे कहने को नहीं समझे, मैं तो केवल जगत् के कारण को ही अनादि कहता हूं और जो कार्य है सो अनादि नहीं होता जैसे मेरा शरीर साढ़े तीन हाथ का है सो उत्पन्न होने से पहिले ऐसा न था और न नाश होने के पश्चात् ही ऐसा रहेगा पर इस में जितने परमाणु हैं वे नष्ट नहीं होते, इस शरीर के परमाणु पृथक् २ होकर

आकाश में चने रहते हैं और उन परमाणुओं मे जो संयोग और वियोग * की शक्ति है तो वह सदा उनमें रहते हैं ॥ जैसा मट्टी से घड़ा बनाया जो कि बनाने के पहिले नहीं था और नाश होने के पश्चात् भी नहीं रहेगा, परन्तु उस में जो मट्टी है वह नष्ट नहीं होती और जो गुण अर्थात् चिकनापन उसमें है कि जिस से वह पिण्डाकार होता है वह भी मट्टी में सदा से है, वैसे ही संयोग और वियोग होने की योग्यता परमाणुओं में सदा से है इस से यह समझना चाहिये कि उन परमाणु द्रव्यों से यह जगत् बना है, वे द्रव्य अनादि हैं, कार्य्य द्रव्य नहीं और मैंने यह कब कहा था कि जगत् के पदार्थ स्वयं अपने को बना सकते हैं, मेरा कहना तो यह था कि ईश्वर ने उस कारण से जगत् को रचा है ॥

---

* सब लोग देखते हैं कि अग्नि में बहुतसे पदार्थ जलजाते हैं अब विचार करना चाहिये कि जब कोई पदार्थ जलजाता है तो क्या हो जाता है। देखने में आता है कि लकड़ी जल कर थोड़ीसी राख रहती है तो अब यह विचारना चाहिये कि जलने से वह पदार्थ ही नष्ट हो जाता है वा उसका स्वरूप ही बदल जाता है, जब मोमबत्ती जलाते हैं तो देखने मे वह मोम नहीं रहता, यह नहीं जान पड़ता कि कहां गया परन्तु उस मोम का स्वरूप बदल कर वायु के सदृश हो जाता है और इसी कारण वायु में मिल जाने से दृष्टि में नहीं आता ॥

इस की परीक्षा के लिये एक बोतल के भीतर मोमबत्ती जलाओ और उस का मुख बंद कर दो तो उस बत्ती का जितना भाग वायु के सदृश हो जावेगा वह बोतल से बाहर नहीं जा सकेगा पर थोडी देर के पीछे यह दिखलाई देगा कि वह बत्ती बुझ गई ॥

अब यह सोचना चाहिये कि बत्ती क्यों बुझ गई ! और बोतल के वायु में अब कुछ भेद हुआ वा नहीं ? ।

इस बात की परीक्षा इस प्रकार होगी कि थोड़ासा चूने का पानी उस बोतल में और एक और बोतल में कि जिसमें केवल वायु भरा हुआ हो और उसमें कोई बत्ती न जली हो डालो, तो यह दिखलाई देगा कि जिस बोतल में बत्ती जली है उसमें चूने का रंग दूध सा हो जावेगा और दूसरा बोतल का जैसे का तैसा रहेगा, इस से सिद्ध हुआ कि बत्ती के जलाने से कोई नई वस्तु बोतल के वायु में मिल गई है। वह एक वस्तु वायु के सदृश है कि जो दृष्टि में नहीं आता अब देखना चाहिये कि मोमबत्ती का कोई परमाणु नष्ट नहीं होता पर जिन पदार्थों से वह बत्ती बनी है उन का स्वरूप भिन्न हो जाता है ॥

और जो पादरी साहब ने कहा कि शक्ति से जगत् को रचा है तो मैं पूछता हूं कि शक्ति कोई वस्तु है वा नहीं ? जो कहो कि है तो वह अनादि हुई और जो कहो कि नहीं तो उस से आगे को दूसरी कोई वस्तु भी नहीं बन सकती। और जो पादरी साहब ने यह कहा कि पण्डितजी ने यह नहीं बताया कि किससे यह जगत् बना है, कदाचित् पादरी साहब ने नहीं सुना होगा मैंने तो जिस से यह कार्य जगत् बना है उस को प्रकृति आदि नामों से कि जिस को परमाणु भी कहते हैं कहा था ॥

(मौलवी साहब के उत्तर में)

सब पदार्थों का कारण अनादि है तो भी ईश्वर को मानना अवश्य है, क्योंकि मट्टी में यह सामर्थ्य नहीं कि आप से आप घड़ा बन जाय। जो कारण होता है वह आप कार्य्यरूप नहीं बन सकता क्योंकि उसमें बनने का ज्ञान नहीं होता और कोई जीव भी उस को नहीं बना सकता आजतक किसी ने कोई वस्तु ऐसी नहीं बनाई जैसा कि यह मेरा रोम है, ऐसी वस्तु कोई नहीं बना सकता और आज तक ऐसा कोई मनुष्य नहीं हुआ और न है कि जो परमाणुओं को पकड़ के किसी युक्ति से उनसे ऐसा वस्तु बना सके, कोई दो त्रिसरेणुओं का भी संयोग नहीं कर सकता, इससे यह सिद्ध हुआ कि केवल उस परमेश्वर को ही यह सामर्थ्य है कि सब जगत् को रचे ॥

देखो एक आंख की रचना मे ही कितनी विद्या का दृष्टान्त है, आज तक बड़े २ वैद्य अपनी बुद्धि लगाते चले आते हैं तो भी आंख की विद्या अधूरी ही है कोई नहीं जानता कि किस २ प्रकार और क्या २ गुण ईश्वर ने उस में रक्खे हैं॥ इसलिये सूर्य चांद आदि जगत् का रचना और धारण करना ईश्वर ही का काम है, तथा जीवों के कर्मों के फल का पहुचाना यह भी परमात्मा ही का काम है किसी दूसरे का नहीं इस से ईश्वर को मानना अवश्य है ॥

एक हिन्दुस्तानी पादरी साहब.

जब दो वस्तु हैं एक कार्य्य दूसरा कारण तो दोनों अनादि नहीं हो सकते इस से ईश्वर ने नास्ति से अस्ति अपनी सामर्थ्य से की है ॥

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

गुण दो प्रकार के होते हैं एक अंतस्थ, दूसरा बाह्य, अंतस्थ तो अपने में होते है और बाह्य दूसरे से अपने में आते हैं। और अंतस्थ गुण दूसरे में जाकर वैसे ही बन जाते हैं परन्तु जिसके गुण होते है वह उन से पृथक् होता है जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब

जिस वर्त्तन में पड़ता है वैसा ही बन जाता है परन्तु सूर्य्य नहीं हो जाता वैसे ही ईश्वर ने हम को अपनी इच्छा से बनाया है ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी.

(ईसाई साहब के उत्तर मे)

आप दोनों के अनादि होने में क्यों शंका करते हैं क्योंकि जितने पदार्थ इस जगत् में बने हैं उन सब का कारण अर्थात् परमाणु आदि सब अनादि हैं और जीव भी अनादि है कि जिन की संख्या कोई नहीं बता सकता और नास्ति से अस्ति कभी नहीं हो सकती सो मै पहिले कह चुका हूं परन्तु आप जो कहते है कि शक्ति से बनाया तो बतलाओ कि शक्ति क्या वस्तु है ? जो कहो कि कोई वस्तु है, तो फिर वही कारण ठहरने से अनादि हुई। और ईश्वर के नाम गुण कर्म सब अनादि हैं कोई अब नहीं बने ॥

(मौलवी साहब के उत्तर में)

आप जो यह कहो कि भीतर के गुणों से जगत् बना है तो भी नहीं बन सकता क्योंकि गुण द्रव्य के विना अलग नहीं रह सकते और गुण द्रव्य से बन भी नहीं सकता। जब भीतर के गुणों से जगत् बना है तो जगत् भी ईश्वर हुआ, जो यह कहो कि बाहर के गुणों से जगत् बना तो ईश्वर के सिवाय आप को भी वे गुण और द्रव्य अनादि मानने पड़ेंगे। और जो यह कहो कि इच्छा से हम लोग बन गए तो मेरा यह प्रश्न है कि इच्छा कोई वस्तु है वा गुण है ? जो वस्तु कहोगे तो वह अनादि ठहर जायगी और जो गुण मानोगे तो जैसे केवल इच्छा से घड़ा नहीं बन सकता परन्तु मट्टी से बनता है तो वैसे ही इच्छा से हम लोग नहीं बन सकते ॥

पादरी स्काट साहब.

हम लोग इतना जानते है कि नास्ति से अस्ति को ईश्वर ने बनाया, यह हम नहीं जानते कि किस पदार्थ से और किस प्रकार यह जगत् बनाया, इस को ईश्वर ही जानता है, मनुष्य कोई नहीं जान सकता ॥

मौलवी मुहम्मद कासम साहब.

ईश्वर ने अपने प्रकाश से जगत् बनाया है ॥

स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी.

(पादरी साहब के उत्तर में)

कार्य को देख कर कारण को देखना चाहिये कि जो वस्तु कार्य है वैसा ही उस

का कारण होता है, जैसे घड़े को देखकर उसका कारण मट्टी जान लिया जाता है, कि जो वस्तु घड़ा है वही वस्तु मट्टी है । आप कहते हैं कि अपनी शक्ति से जगत् को रचा सो मेरा यह प्रश्न है कि वह शक्ति अनादि है वा पीछे से बनी है ? जो अनादि है तो द्रव्यरूप उस को मान लो, तो उसी को जगत् का अनादि कारण मानना चाहिये ॥

(मौलवी साहब के उत्तर में)

नूर कहते हैं प्रकाश को, उस प्रकाश से कोई दूसरा द्रव्य नहीं बन सकता, परन्तु वह नूर मूर्त्तिमान् द्रव्य को प्रसिद्ध दिखला सकता है और वह प्रकाश करनेवाले पदार्थ के विना अलग नहीं रह सकता । इस से जगत् का जो कारण प्रकृति आदि अनादि है उस को माने विना किसी प्रकार से किसी का निर्वाह नहीं हो सकता । और हम लोग भी कार्य को अनादि नहीं मानते परन्तु जिस से कार्य बना है उस कारण को अनादि मानते हैं ॥

एक हिन्दुस्तानी ईसाई साहब.

जो ईश्वर ने अपनी प्रकृति से सब संसार को रचा तो उस की प्रकृति में सब संसार सनातन था और वह उस की प्रकृति में अनादि था तो ईश्वर की सीमा होगई ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी.

जब कि ईश्वर की प्रकृति में सब जगत् था तब ही तो वह अनादि हुआ और वही अनादि वस्तु रचने से सीमा में आई अर्थात् लम्बा, चौड़ा, बड़ा, छोटा आदि सब प्रकार का ईश्वर ने उस में से बनाया । इसलिये रचे जाने से केवल जगत् ही की सीमा हुई ईश्वर की नहीं ॥

अब देखिये मैंने जो पहिले कहा था कि नास्ति से अस्ति कभी नहीं हो सकती किन्तु भाव से ही भाव होता है सो आप लोगों के कहने से भी वह बात सिद्ध होगई कि जगत् का कारण अनादि है ॥

ईसाइ साहब.

सुनो भाई मौलवी साहबो ! कि पण्डित जी इस का उत्तर हजार प्रकार से दे सकते हैं हम और तुम हजारों मिल कर भी इन से बात करें तो भी पण्डित जी बराबर उत्तर दे सकते हैं, इसलिये इस विषय में अधिक कहना उचित नहीं ॥

ग्यारह बजे तक यह वार्त्ता सिद्ध हुई, फिर सब लोग अपने २ डेरों को चले गये और सब जगह मेले में यही बात चीत होती थी कि जैसा पण्डितजी को सुनते थे उस से सहस्रगुणा पाया ॥

दोपहर के पश्चात् की सभा.

फिर एक बजे सब लोग आये और इस पर विचार किया कि अब समय बहुत थोड़ा और बातें बहुत बाक़ी हैं इसलिये केवल मुक्ति विषय पर विचार करना उचित है। प्रथम थोड़ी देर तक ये बातें होती रहीं कि पहिले कौन वर्णन करे, एक दूसरे पर टालता था। तब स्वामीजी ने कहा कि उसी क्रम से भाषण होना चाहिये अर्थात् पहिले पादरी साहब फिर मौलवी साहब और फिर मैं, परन्तु जब पादरी साहब और मौलवी साहब दोनों ने कहा कि हम पहिले न बोलेंगे, तब स्वामीजी ने ही पहिले कहना स्वीकार किया ॥

स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी.

मुक्ति कहते हैं छूट जाने को, अर्थात् जितने दुःख हैं उनसे सब छूट कर एक सच्चिदानन्दरूप परमेश्वर को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहना और फिर जन्म मरण आदि दुःखसागर में नहीं गिरना इसी का नाम मुक्ति है।

वह किस प्रकार से होती है इस का पहिला साधन सत्य का आचरण है और वह सत्य आत्मा और परमात्मा की साक्षि से निश्चय करना चाहिये अर्थात् जिस में आत्मा और परमात्मा की साक्षी न हो वह असत्य है, जैसे किसी ने चोरी की जब वह पकड़ा गया उस से राजपुरुष ने पूछा कि तू ने चोरी की या नहीं? तबतक वह कहता है कि मैंने चोरी नहीं की परन्तु उस का आत्मा भीतर से कहरहा है कि मैंने चोरी की है तथा जब कोई झूठ की इच्छा करता है तब अन्तर्यामी परमेश्वर उस को जिता देता है कि यह बुरी बात है इस को तू मत कर और लज्जा शङ्का और भय आदि उस के आत्मा में उत्पन्न कर देता है और जब सत्य की इच्छा करता है तब उस के आत्मा में आनन्द कर देता है और प्रेरणा करता है कि यह काम तू कर। अपना आत्मा जैसे सत्य काम करने में निर्भय और प्रसन्न होता है, वैसे झूठ में नहीं होता। जब परमात्मा की आज्ञा को तोड़कर बुरा काम कर लेता है तब उसकी मुक्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती और उसी को असुर दुष्ट दैत्य और नीच कहते हैं इस में वेद का प्रमाण है कि—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ यजुर्वेदे। अध्याये ४०। मन्त्र ३॥

आत्मा का हिंसन करनेवाला अर्थात् जो परमेश्वर की आज्ञा को तोड़ता है और अपने आत्मा के ज्ञान से विरुद्ध बोलता करता और मानता है उसी का नाम असुर, राक्षस, दुष्ट, पापी, नीच आदि होता है॥

मुक्ति के मिलने के साधन ये हैं:—

१—सत्य का आचरण ।

२—सत्यविद्या अर्थात् ईश्वरकृत वेदविद्या को यथावत् पढ़कर ज्ञान की उन्नति और सत्य का पालन यथावत् करना ।

३—सत्पुरुष ज्ञानियों का सङ्ग करना ।

४—योगाभ्यास करके अपने मन, इन्द्रियों और आत्मा को असत्य से हटाकर सत्य में स्थिर करना और ज्ञान को बढ़ाना ।

५—परमेश्वर की स्तुति करना अर्थात् उस के गुणों की कथा सुनना और विचारना ।

६—प्रार्थना कि जो इस प्रकार होती है कि हे जगदीश्वर ! हे कृपानिधे ! हे अस्मत्पितः ! असत्य से हम लोगों को छुड़ा के सत्य में स्थिर कर और हे भगवन् ! हम को अन्धकार अर्थात् अज्ञान और अधर्म आदि दुष्ट कामों से अलग कर के विद्या और धर्म आदि श्रेष्ठ कामों में सदा के लिये स्थापन कर और हे ब्रह्म ! हम को जन्ममरणरूप संसार के दुःखों से छुड़ाकर अपनी कृपाकटाक्ष से अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर।

जब सत्य मन से अपने आत्मा प्राण और सब सामर्थ्य से परमेश्वर को जीव भजता है तब वह करुणामय परमेश्वर उस को अपने आनंद में स्थिर कर देता है, जैसे जब कोई छोटा बालक घर के ऊपर से अपने माता पिता के पास नीचे आना चाहता है वा नीचे से ऊपर उनके पास जाना चाहता है तब हज़ारों आवश्यकता के कामों को भी माता पिता छोडकर और दौडकर अपने लड़के को उठाकर गोद में लेते हैं कि हमारा लड़का कहीं गिर पड़ेगा तो उसके चोट लगने से उसको दुःख होगा और जैसे माता पिता अपने बच्चों को सदा सुख में रखने की इच्छा और पुरुषार्थ सदा करते रहते हैं वैसे ही परम कृपानिधि परमेश्वर की ओर जब कोई सच्चे आत्मा के भाव से चलता है तब वह अनन्तशक्तिरूप हाथों से उस जीव को उठाकर अपनी गोद में सदा के लिये रखता है, फिर उसको किसी प्रकार का दुःख नहीं होने देता है और वह सदा आनन्द में रहता है । पक्षपात को छोड़कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करके अर्थ को सिद्ध करना चाहिये । देखो सब अन्याय अधर्म और पक्षपात से होता है जैसे कि यह मौलवी साहब का वस्त्र बहुत अच्छा है मुझ को मिले तो मैं उसको ओढकर सुख पाऊं, इस में अपने सुख का पक्षपात किया और मौलवी साहब के सुख दुःख का कुछ विचार न किया । इसी प्रकार पक्षपात से ही नित्य अधर्म होता है । अधर्म से काम को सिद्ध करना इसी को अनर्थ कहते हैं और धर्म और अर्थ से कामना अर्थात् अपने सुख की सिद्धि करना इस को काम कहते हैं, और अधर्म अर्थात् अनर्थ से काम को सिद्ध करना इस को कुकाम कहते हैं इसलिये इन तीनों अर्थात्

धर्म अर्थ और काम से मोक्ष को सिद्ध करना उचित है। इस में यह बात है कि ईश्वर की आज्ञा का पालन करना इस को धर्म और उस की आज्ञा का तोड़ना इस को अधर्म कहते हैं सो धर्म आदि ही मुक्ति के साधन हैं और कोई नहीं और मुक्ति सत्य पुरुषार्थ से सिद्ध होती है अन्यथा नहीं।

पादरी स्काट साहब.

पण्डितजी ने कहा सब दुःखों से छूटने का नाम मुक्ति है, परन्तु मैं कहता हूं कि सब पापों से बचने और स्वर्ग में पहुंचने का नाम मुक्ति है कारण यह है कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था परन्तु शैतान ने उस को बहका के उस से पाप करा दिया, इस से उस की सब सन्तान भी पापी है, जैसे घड़ी बनानेवाले ने उस की चाल स्वतन्त्र रक्खी है और वह आप ही चलती है ऐसे ही मनुष्य भी अपनी इच्छा से पाप करते हैं तो फिर अपने ऐश्वर्य्य मे मुक्ति नहीं पा सकते और न पापों से बच सकते हैं। इसलिये प्रभु ईसामसीह पर विश्वास किये विना मुक्ति नहीं हो सकती जैसे हिन्दू लोग कहते हैं कि कलियुग मनुष्यों को पाप करा के बिगाड़ता है इस से उन की मुक्ति नहीं हो सकती परन्तु ईसामसीह पर विश्वास करने से वे भी बच सकते हैं।

प्रभु ईसामसीह जिस २ देश में गये अर्थात् उस की शिक्षा जहां २ गई है वहां २ मनुष्य पापों से बचते जाते हैं। देखो इस समय सिवाय ईसाइयों के और किसी के मत में भलाई और अच्छे गुणो की उन्नति है ? मैं एक दृष्टान्त देता हूं कि जैसे पण्डितजी बलवान् हैं ऐसे ही इङ्गलिस्तान में एक मनुष्य बलवान् था परंतु वह मद्यपान चोरी व्यभिचार आदि बुरे काम करता था जब वह ईसामसीह पर विश्वास लाया तब सब बुराइयों से छूट गया और मैंने भी जब मसीह पर विश्वास किया तब मुक्ति को पाया और बुरे कामों से बच गया, सो ईसामसीह की आज्ञा के विरुद्ध आचरण से मुक्ति नहीं हो सकती, इसलिये सब को ईसामसीह पर विश्वास लाना चाहिये, उसी से मुक्ति हो सकती है और किसी प्रकार नहीं।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

हम लोग यह नहीं कह सकते कि पण्डितजी ने जो मुक्ति के साधन कहे केवल उन से ही मुक्ति हो सकती है। क्योंकि ईश्वर की इच्छा है जिस को चाहे उस को मुक्ति दे और जिस को न चाहे न दे, जैसे समय का हाकिम जिस अपराधी से प्रसन्न हो उस को छोड़ दे और जिस से अप्रसन्न हो उस को क़ैद में डाल दे। उस की इच्छा है जो चाहे सो करे, उस पर हमारा ऐश्वर्य्य नहीं है, न जाने

ईश्वर क्या करेगा, पर समय के हाकिम पर विश्वास रखना चाहिए, इस समय का हाकिम हमारा पैग़म्बर है उस पर विश्वास लाने से मुक्ति होती है । हां ! यह बात अवश्य है कि विद्या से अच्छे काम हो सकते हैं परन्तु मुक्ति तो केवल उसी के हाथ में है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी.

(पादरी साहब के उत्तर मे)

आप ने जो यह कहा कि दुःखों से छूटना मुक्ति नहीं, पापों से छूटने का नाम मुक्ति है सो मेरे अभिप्राय को न समझ कर यह बात कही है क्योंकि मैं तो पहिले साधन में ही सब पापों अर्थात् असत्य कामों से बचना कह चुका हूं और बुरे कामों का फल भी दुःख कहाता है अर्थात् जब पाप करेगा तो दुःख से नहीं बच सकता। इस के अनन्तर और साधनों में भी स्पष्ट कहा है कि अधर्म छोड़कर धर्म का आचरण करना मुक्ति का साधन है, जो पादरी साहब इन बातों को समझते तो कदाचित् ऐसी बात न कहते ।

दूसरा जो आप यह कहते हैं कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था परन्तु शैतान ने बहका कर पाप करा दिया तो उस की सन्तान भी इसी कारण से पापी होगई सो यह बात ठीक नहीं है क्योंकि आप लोग ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानते ही हैं सो जब कि ईश्वर के पवित्र बनाये आदम को शैतान ने बिगाड दिया और ईश्वर के राज्य में विघ्न करके ईश्वर की व्यवस्था को तोड़ डाला तो इस से ईश्वर सर्वशक्तिमान् नहीं रह सकता और ईश्वर की बनाई हुई वस्तु को कोई नहीं बिगाड़ सकता है और एक आदम ने पाप किया तो उसकी सारी सन्तान पापी होगई यह सर्वथा असम्भव और मिथ्या है जो पाप करता है वही दुःख पाता है दूसरा कोई नहीं पा सकता और ऐसी बात कोई विद्वान् नहीं मानेगा । और देखो एक आदम और हव्वा से किसी प्रकार इस जगत् की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती क्योंकि बहन और भाई का विवाह होना बड़े दोष की बात है, इसलिये ऐसी व्यवस्था मानना चाहिये कि सृष्टि की आदि में बहुतसे पुरुष और स्त्री परमेश्वर ने रचे ।

और जो यह कहा कि शैतान बहकाता है तो मेरा यह प्रश्न है कि जब शैतान ने सब को बहकाया तो फिर शैतान को किसने बहकाया ? जो कहो कि शैतान आप से आप ही बहक गया तो सब जीव भी आप से आप ही बहक गये होंगे, फिर शैतान को बहकानेवाला मानना व्यर्थ है, जो कहो कि शैतान को भी किसी ने बहकाया है तो सिवाय ईश्वर के दूसरा कोई बहकानेवाला शैतान को नहीं है, तो फिर जब ईश्वर ने ही

सब को बहकाया तब मुक्ति देनेवाला कोई भी आप लोगों के मत में न रहा और न मुक्ति पानेवाला, क्योंकि जब परमात्मा ही बहकानेवाला ठहरा तो बचानेवाला कोई भी नहीं हो सकता। और यह बात परमात्मा के स्वभाव से भी विरुद्ध है क्योंकि वह न्यायकारी और सत्य कामों का ही कर्त्ता है तथा अच्छे कामों में ही प्रसन्न होता है, वह किसी को दुःख देनेवाला और बहकानेवाला, नहीं॥

और देखो कैसे आश्चर्य की बात है कि यदि शैतान ईश्वर के राज्य में इतना गड़बड़ करता है फिर भी ईश्वर उसको न दण्ड देता है, न मारता है, न कारागृह मे डालता है, इसमे स्पष्ट परमात्मा की निर्बलता पाई जाती है और विदित होता है कि परमात्मा ही को बहकाने की इच्छा है, इस से यह बात ठीक नहीं और न शैतान कोई मनुष्य है, जबतक शैतान के माननेवाले शैतान का मानना न छोड़ेंगे तबतक पाप करने से नहीं बच सकते क्योंकि वे समझते हैं कि हम तो पापी ही नहीं जैसा शैतान ने आदम को और उस की सन्तान को बहकाके पापी किया वैसा ही परमात्मा ने आदम की सन्तान के पाप के बदले मे अपने एकलौते बेटे को शूली पर चढा दिया फिर हम को क्या डर है और जो हम से कुछ पाप भी होता है तो हमारा विश्वास ईसामसीह पर है वह आप क्षमा करा देगा क्योंकि उसने हमारे पापों के बदले में जान दी है इसलिये ऐसी व्यवस्था माननेवाले पापों से नहीं बच सकते।

और जो घड़ी का दृष्टान्त दिया था सो ठीक है क्योंकि सब अपने २ काम करने में स्वतन्त्र हैं परन्तु ईश्वर की आज्ञा अच्छे कामों के करने के लिये है बुरे के लिये नहीं और जो आपने यह कहा कि स्वर्ग में पहुंचना मुक्ति है शैतान के बहकाने के कारण मनुष्यों में शक्ति नहीं कि पापों से छूट कर मुक्ति पासकें—यह बात भी ठीक नहीं क्योंकि जब मनुष्य स्वतन्त्र हैं और शैतान कोई मनुष्य नहीं तो आप दोषों से बचकर परमात्मा की कृपा से मुक्ति को पा सकते हैं और स्वर्ग से आदम गेहूं खाने के कारण निकाला गया और यह ही आदम का पाप हुआ कि गेहूं खाया तो मैं आप से पूछता हूं कि आदम ने तो गेहूं खाया और पापी होगया और स्वर्ग से निकाला गया, आप लोग जो उस स्वर्ग की इच्छा करते हैं तो क्या आप लोग वहां सब पदार्थ खावेंगे ? तो क्या पाप नहीं होगा ? और वहां से निकाले नहीं जाओगे ? इस से यह बात भी ठीक नहीं हो सकती ॥

और आप लोगों ने ईश्वर को मनुष्य के सदृश माना होगा अर्थात् जैसे मनुष्य सर्वज्ञ नहीं वैसे ही आप ने परमात्मा को भी माना होगा कि जिससे आप वहां गवा-

हीं और वकील की आवश्यकता बतलाते हैं ? परन्तु आप के ऐसे कहने से ईश्वर की ईश्वरता सब नष्ट हो जाती है। वह सब कुछ जानता है, उसको गवाही और वकील की कुछ आवश्यकता नहीं है और उस को किसी की सिफ़ारिश की भी आवश्यकता नहीं क्योंकि सिफ़ारिश न जाननेवाले से की जाती है। और देखिये आप के कहने से परमात्मा पराधीन ठहरता है क्योंकि विना ईसामसीह की गवाही वा सिफ़ारिश के वह किसी को मुक्ति नहीं दे सकता और कुछ भी नहीं जानता इस से परमात्मा में अल्पज्ञता आती है कि जिससे वह सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ किसी प्रकार नहीं हो सकता। और देखो जब कि वह न्यायकारी है तो किसी की सिफ़ारिश और मिथ्या प्रशंसा से न्याय के विरुद्ध कदाचित् नहीं कर सकता, जो विरुद्ध करता है तो न्यायकारी नहीं ठहर सकता। इसी प्रकार जो आप मनुष्य हाकिम के सदृश ईश्वर के दरबार में भी फरिश्तों का होना मानोगे तो और बहुतसे दोष ईश्वर में आवेंगे, इस से ईश्वर सर्वव्यापक नहीं हो सकता क्योंकि जो सर्वव्यापक है तो शरीरवाला न होना चाहिये और जो सर्वव्यापक नहीं है तो अवश्य है कि शरीरवाला हो और शरीरवाला होने से उस की शक्ति सब पर घेरनेवाली न हुई, शरीरवाला जितना दूर का ज्ञान रखता है पर उसको पकड़ और मार नहीं सकता।

और जो शरीरवाला होगा उसका जन्म और मरण भी अवश्य होगा, इसलिये ईश्वर को किसी एक जगह पर और फरिश्तों का उसके दरबार में होना ऐसी बातें मानना किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता, नहीं तो ईश्वर की सीमा हो जायगी देखो हम आर्य्य लोगों के शास्त्रों को यथावत् पढे विना लोगों का उलटा निश्चय हो जाता है अर्थात् कुछ का कुछ मान लिया जाता है, जो पादरी साहब ने कलियुग के विषय में कहा सो ठीक नहीं क्योंकि हम आर्य्य लोग युगों की व्यवस्था इस प्रकार से नहीं मानते, इसमें ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण है कि:—

कलिश्शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्॥
ऐत०। पञ्चिका ७। कण्डिका १५॥

अर्थात् जो पुरुष सर्वथा अधर्म करता है और नाममात्र धर्म करता है उसको कलि और जो आधा अधर्म और आधा धर्म करता है उसको द्वापर और एक हिस्सा अधर्म और तीन हिस्से धर्म करता है उसको त्रेता और जो सर्वथा धर्म करता है उस को सतयुग कहते हैं॥

इस के जाने विना कोई बात कह देना ठीक नहीं हो सकती ॥

इस से जो कोई बुरा काम करता है वह दुःख पाने से कदाचित् नहीं बच सकता और जो कोई अच्छा काम करता है वह दुःख पाने से बच जाता है किसी ही देश मे चाहे क्यों न हो ॥

क्या ईसामसीह के विना ईश्वर अपने सामर्थ्य से अपने भक्तों को नहीं बचा सकता है? वह अपने भक्तों को सब प्रकार से बचा सकता है उस को किसी पैगम्बर की आवश्यकता नहीं। हां! यह सच है कि जब जिस २ देश में शिक्षा करने वाले धर्मात्मा उत्तम पुरुष होते हैं, उस २ देश के मनुष्य पापों से बच जाते हैं और उन्हीं देशों में सुख और गुणों की वृद्धि होती है यह भी सब लोगों के लिये सुधार है इस का कुछ मत से प्रयोजन नहीं देखो आर्य लोगों में पूर्व उपदेश की व्यवस्था अच्छी थी इस से उस समय में वे सुधरे हुए थे इस समय में अनेक कारणों से सत्य उपदेश कम होने से जो किसी बात का बिगाड़ हो तो इस से आर्य लोगों के सनातन मत में कोई दोष नहीं आसकता क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति के समय से ले के आजतक आर्यों ही का मत चला आता है वह कुछ बहुत नहीं बिगड़ा ॥

देखो जितने १८०० वा १३०० वर्षों के भीतर ईसाइयों और मुसलमानों के मतों मे आपस के विरोध से फिरके होगये हैं उन के सामने जो १९६०८५२९७६ वर्षों के भीतर आर्यों के मत में विगाड़ हुआ तो वह बहुत ही कम है। और आप लोगों में जितना सुधार है सो मत के कारण नहीं किन्तु पार्लिमेण्ट आदि के उत्तम प्रबन्ध से है जो ये न रहें, मत से कुछ भी सुधार न हो और पादरी साहब ने जो इङ्गलिस्तान के दुष्ट मनुष्य का दृष्टान्त मेरे साथ मिला कर दिया सो इस प्रकार कहना उन को योग्य न था परन्तु न जाने किस प्रकार से यह बात भूल से उन के मुख से निकली।

(मौलवी साहब के उत्तर में)

ईश्वर चाहे सो करे ऐसा ठीक नहीं, क्योंकि वह पूर्ण विद्या और ठीक २ न्याय पर सदा रहता है, किसी का पक्षपात नहीं करता ॥

इस कहने से कि जो चाहे सो करे यह भी आता है कि ईश्वर ही बुराई भी करता होगा और उसी की इच्छा से बुराई होती है यह कहना ईश्वर में नहीं बनता ईश्वर जो कोई मुक्ति का काम करता है उसी को मुक्ति देता है मुक्ति के काम के विना किसी को मुक्ति नहीं देता, क्योंकि वह अन्याय कभी नहीं करता जो विना पाप पुण्य के देखे जिस को चाहे दुःख देवे और जिस को चाहे सुख तो ईश्वर में

अन्याय आदि प्रमाद लगता है, सो वह ऐसा कभी नहीं करता, जैसे अग्नि का स्वभाव प्रकाश और जलानेका है इन के विरुद्ध नहीं कर सकता वैसे ही परमात्मा भी अपने न्याय के स्वभाव से विरुद्ध पक्षपात से कोई व्यवस्था नहीं कर सकता।

सब समय का हाकिम मुक्ति के लिये परमेश्वर ही है दूसरा कोई नहीं और जो कोई दूसरे को माने उस का मानना व्यर्थ है।

मुक्ति दूसरे पर विश्वास करने से कभी नहीं हो सकती क्योंकि ईश्वर जो मुक्ति देने में दूसरे के आधीन है या दूसरे के कहने से दे सकता है तो मुक्ति देने में ईश्वर पराधीन है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता वह किसी का सहाय अपने काम में नहीं लेता क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है।

मैं जानता हू कि सब विद्वान् ऐसा ही मानते होंगे जो पक्षपात से औरों के दिखाने को न मानते हों तो दूसरी बात है।

इस में मुझ को बड़ा आश्चर्य है कि परमात्मा को "लाशरीक" भी मानते हैं और फिर पैगम्बरों को भी मुक्ति देने में उस के साथ मिला देते हैं! यह बात कोई विद्वान् नहीं मानेगा।

इससे यह सिद्ध होता है कि परमेश्वर धर्मात्मा मनुष्यों को मुक्ति के काम करने से मुक्ति स्वतन्त्रता से दे सकता है, किसी की सहायता के आधीन नहीं, मनुष्य को ही आपसमें सहायता की आवश्यकता है ईश्वर को नहीं, न वह मिथ्या प्रसन्न होनेवाला है जो मिथ्या प्रसन्न होकर अन्याय करे, वह तो अपने सत्य धर्म और न्याय से सदा युक्त है और अपने सत्य प्रेम के भरे हुए भक्तों को यथावत् मुक्ति देकर और सब दुःखों से बचाकर सदा के लिये आनन्द में रखता है, इस में कुछ संदेह नहीं।

इतने में चार बज गये। स्वामीजी ने कहा कि हमारा व्याख्यान बाकी है, मौलवी साहब ने कहा कि हमारे नमाज़ का समय आगया। पादरी स्काट साहब ने स्वामीजी से कहा कि हम को आप से एकान्त में कुछ कहना है, सो वे दोनों तो उधर गये, इधर एक ओर तो एक मौलवी मेज़ पर जूता पहने हुए खड़े होकर और दूसरी ओर पादरी अपने मत का व्याख्यान देने लगे।

और कितने ही लोगों ने यह उड़ा दिया कि मेला हो चुका, तब स्वामीजी ने पादरी और आर्यलोगों से पूछा कि यह क्या गड़बड़ हो रहा है मौलवी लोग नमाज़ पढ़कर आये वा नहीं? उन्होंने उत्तर दिया कि मेला तो हो चुका! इस पर स्वामीजी बोले कि ऐसे झटपट मेला किस ने समाप्त कर दिया, न किसी की सम्मति ली गई न किसी से

पूछा गया अब आगे कुछ बात चीत होगी वा नहीं ? जब वहां बहुत गड़बड़ देखा और संवाद की कोई व्यवस्था न जान पड़ी तो लोगों ने स्वामीजी से कहा कि आप भी चलिये मेला तो पूरा होही गया, इस पर स्वामीजी ने कहा कि हमारी इच्छा तो यह थी कि कम से कम पांच दिन मेला रहता, इस के उत्तर मे पादरी साहबों ने कहा कि हम दो दिन से अधिक नहीं रह सक्ते, फिर स्वामीजी आकर अपने डेरे पर धर्मसंवाद करने लगे, उस दिन रात को पादरी स्काट साहब और दो पादरियो के साथ स्वामीजी के डेरे पर आये, स्वामीजी ने कुरसियां बिछवा कर आदरपूर्वक उन को बिठलाया और आप भी बैठ गये। फिर आपस में बात चीत होने लगी, पादरी साहबों ने पूछा कि आवागमन सत्य है वा असत्य और इस का क्या प्रमाण है ? स्वामीजी ने कहा कि आवागमन सत्य है और जो जैसे कर्म करता है वैसा ही शरीर पाता है, जो अच्छे काम करता है तो मनुष्य का और जो बुरे करता है तो पक्षी आदि का शरीर पाता है, और जो बहुत उत्तम काम करता है वह देवता अर्थात् विद्वान् और बुद्धिमान् होता है । देखो जब बालक उत्पन्न होता है। तब उसी समय अपनी माता का दूध पीने लगता है कारण यही है कि उस को पहिले जन्म का अभ्यास बना रहता है यह भी एक प्रमाण है। और धनाढ्य, कङ्गाल, सुखी, दुःखी, अनेक प्रकार के ऊंच नीच देखने से विदित होता है कर्मों का फल है । कर्म से देह और देह से आवागमन सिद्ध है, जीव अनादि हैं कि जिन का आदि और अन्त नहीं, जिस योनि से जीव जन्म लेता है उस का कुछ स्वभाव भी बना रहता है इसी कारण मनुष्य आदि विचित्र स्वभाव और प्रकृति आदि के होते हैं, इस से भी आवागमन सिद्ध है ।

इसी प्रकार और बहुतसे प्रमाण आवागमन के हैं, परन्तु जीव का एक बार उत्पन्न होना और फिर कभी न होना इस का कुछ प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि जो मैंने कहा उस के विरुद्ध होना चाहिये था सो ऐसा होना असम्भव है और फिर यह बात कि मरा और हवालात हुई अर्थात् जब कयामत होगी तब उसका हिसाब किताब होगा तब तक बेचारा हवालात में रहा मानना अच्छा नहीं । फिर पादरी साहब चले गये ॥

मौलवियों ने शाहजहांपुर जाकर मुन्शी इन्द्रमणिजी को लिखा कि जो आप यहां आवें तो हम आप से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, परन्तु जब स्वामीजी और मुन्शीजी वहां पहुंचे तो किसी ने शास्त्रार्थ का नाम तक भी न लिया ॥

ऋषि (७) काल (३) ङ्क (९) ब्रह्मा (१) ब्दे नभश्शुक्लदले तिथौ । द्वादश्यां मंगले वारे ग्रन्थोऽयं पूरितो मया ॥ ॥ इति ॥

आर्य्यसमाज के नियम ॥

(१)–सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदिमूल परमेश्वर है ॥

(२)–ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है ॥

(३)–वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परमधर्म है ॥

(४)–सत्यग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ॥

(५)–सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें ॥

(६)–संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ॥

(७)–सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिये ॥

(८)–अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ॥

(९)–प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ॥

(१०)–सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ॥

भ्रमोच्छेदन ॥

जो

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के निवेदन के उत्तर में।

श्रीमत्स्वामिदयानन्द सरस्वतीजी ने

सज्जन आर्यों के हितार्थ

निर्माण किया है ॥

श्रीहरिश्चन्द्र त्रिवेदी प्रबन्धकर्त्ता के प्रबन्ध से

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित।

संवत् १९६९ पौषशुक्ला १.

चतुर्थ बार १०००] [मूल्य)॥

ओ३म्

भ्रमोच्छेदन *

अविद्वानों का

मैंने राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की बुद्धि और चतुराई की प्रशंसा सुन के चित्त में चाहा कि कभी उन से समागम होकर आनन्द होवे जैसे पूर्व समय में बहुत ऋषि मुनि विद्वानों के बीच प्रज्ञासागर बृहस्पति महर्षि हुए थे क्या पुनरपि वेही महा अविद्यान्धकार के प्रचार से नाना प्रकार के अन्यान्य विरुद्ध मत मतान्तर के इस वर्त्तमान समय में शरीर धारण करके प्रकट तो नहीं हुए हैं ? ।

देखना चाहिये कि जैसा उनको मैं सुनता हूं वैसे ही वे हैं वा नहीं ऐसी इच्छा थी । यद्यपि मैंने संवत् १९२६ से लेके पाच बार काशी में जाकर निवास भी किया परन्तु कभी उनसे ऐसा समागम न हुआ † कि कुछ वार्तालाप होता, मैंने प्रस्तुत संवत् १९३६ कार्तिक सुदी १४ गुरुवार को काशी में आकर महाराजे विजय नगराधिपति के आनन्दबाग में निवास किया इतने में मार्गशीर्ष सुदी में अकस्मात् राजा शिवप्रसादजी प्रसिद्ध एस् एच् कर्नल ऑलकाट् साहब और एच् पी मेडम ब्लेवेट्स्की को मिलने के लिये आनन्दबाग में आ उनने मुझ से मिलकर कहा कि मैं उक्त साहब और मेडम से मिला चाहता हूं । सुनकर मैंने एक मनुष्य को भेज राजासाहब की सूचना कराई और जबतक उक्त साहब के साथ राजाजी न उठगये तबतक जितनी मैं अपने पत्र में लिख चुका हूं उनसे वातें हुई परन्तु शोक है कि जैसा मेरा प्रथम निश्चय राजाजी पर था वैसा उनको न पाया ‡ मनमें विचारा कि जितनी दूसरे के मुख से बात सुनी जाती है सो सब सच नहीं होती ॥

---

* जो राजा शिवप्रसादजी अपने लेख पर स्वामी विशुद्धानन्दजी का हस्ताक्षर न कराते तो मैं इस पर एक अक्षर भी न लिखता क्योंकि उनको तो संस्कृत विद्या में शब्दार्थ सम्बन्धों के समझने का सामर्थ्य ही नहीं है इसलिये जो कुछ इस पर लिखता हू सो सब स्वामी विशुद्धानन्दजी की ओर ही समझा जावे ॥

† एक बार सय्यद अहमदखां सदरसदूरजी की कोठी पर दूर से देखा था पर वार्त्तालाप नहीं हुआ था ॥

‡ राजाजी की वाचालता बहुत बड़ी और समझ अति छोटी देखी ॥

राजाजी लिखते हैं कि स्वामीजी की बात सुनकर मैं भ्रम में पड़ गया यहां बुद्धिमानों को विचारना चाहिये कि क्या मेरी बात का सुनना ही राजाजी को बड़े संदेह में पड़ने का निमित्त है और उनकी कम समझ और आलस्य कारण नहीं है* जब कि उनको सन्देह ही छुड़ाना था तो मेरे पास आके उत्तर सुन के यथाशक्ति सन्देह निवृत्त कर आनन्दित होना योग्य न था ? जैसा कोमल लेख उनके पत्र में है वैसा भीतर का अभिप्राय नहीं † किन्तु इस में प्रत्यक्ष छल ही विदित होता है। देखो मार्गशीर्ष से लेके वैशाख कृष्ण एकादशी बुधवार पर्यन्त सवाचार मास उनके मिलने के पश्चात् मैं और वे काशी में निवास करते रहे क्यों न मिलके सन्देह निवृत्त किये ?। जब मेरी यात्रा सुनी तभी पत्र भेज के प्रत्युत्तर क्यों चाहे ? मेरे चलने समय प्रश्न करना, मेरे बुलाये पर भी उत्तर सुनने न आना, सवाचार महीने पर्यन्त चुप होके बैठे रहना और मेरे काशी से चले आने पर अपनी व्यर्थ बड़ाई के लिये पुस्तक छपवाकर काशी में और जहां तहां भेजना कि काशी में कोई भी विद्वान् स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने में समर्थ न हुआ किन्तु एक राजा शिवप्रसादजी ने किया। ऐसी प्रसिद्धि होने पर सब लोग मुझको विद्वान् और बुद्धिमान् मानेंगे ऐसी इच्छा का विदित करना आदि हेतुओं से क्या उनकी अयोग्यता की बात नहीं है ? ‡ भला ऐसे मनुष्यों से किसी विद्वान् को उचित है कि बात और शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त होवे ? ऐसे कपट छल के व्यवहार न करने में मनुजी की भी साक्षी अनुकूल है॥

अधर्मेण तु यः प्राह यश्चाऽधर्मेण पृच्छति ।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाधिगच्छति ॥

अर्थ–(यः) जो (अधर्मेण) अन्याय, पक्षपात, असत्य का ग्रहण सत्य का परित्याग, हठ, दुराग्रह से वा जिस भाषा का आप विद्वान् न हो उसी भाषा के

---

* कोई कितना ही बड़ा विद्वान् हो परन्तु अविद्वान् मनुष्य को विद्या की बातें बिना पढ़ाये कभी नहीं समझा सकता न वह बिना पढ़े समझ सकता है।

† हाथी के खाने के दांत भीतर और दिखाने के बाहर होते हैं।

‡ जो राजाजी प्रश्नों के उत्तर चाहते तो ऐसी अयोग्य चेष्टा क्यों करते जब मैंने उनकी अन्यथा रीति जानी तभी उनसे पत्रव्यवहार आगे को न चलाया क्योंकि उनसे संवाद चलाना व्यर्थ देखा ॥

विद्वान् के साथ शास्त्रार्थ किया चाहे और उस भाषा के सच झूठ की परीक्षा करने में प्रवृत्त होवे और कोई प्रतिवादी सत्य कहे उसका निरादर करे इत्यादि अधर्म कर्म से युक्त होकर छल कपट से * (पृच्छति) पूछता है (च) और (यः) जो (अधर्मेण) पूर्वोक्त प्रकार से (प्राह) उत्तर देता है ऐसे व्यवहार में विद्वान् मनुष्य को योग्य है कि न उससे पूछे और न उसको उत्तर देवे। जो ऐसा नहीं करता तो पूछने वा उत्तर देने वाले दोनों में से एक मर जाता है (वा) अथवा (विद्वेषम्) अत्यन्त विरोध को (अधि, गच्छति) प्राप्त होकर दोनों दुःखित होते हैं ॥

जब इस वचनानुसार राजाजी को अयोग्य जानकर लिख के उत्तर नहीं दिये † तो फिर क्या मैं ऐसे मनुष्यों से शास्त्रार्थ करने को प्रवृत्त हो सकता हूं । हां मैं अपरिचित मनुष्यों के साथ चाहे कोई धर्म से पूछे अथवा अधर्म से उन सबों के समाधान करने को एक बार तो प्रवृत्त हो ही जाता हूं, परन्तु उस समय जिसको अयोग्य समझ लेता हूं जबतक वह अपनी अयोग्यता को छोड़कर नहीं पूछता और न कहतां है तबतक उससे सत्याऽसत्यनिर्णय के लिये कभी प्रवृत्त नहीं होता हूं । हां जो सब विद्वानों को योग्य है वह काम तो करता ही हूं, अर्थात् जब २ अयोग्यपुरुष मुझ से मिलता वा मैं उससे मिलता हूं तब २ प्रथम उसकी अयोग्यता के छुडाने में प्रयत्न करता हूं, जब वह धर्मात्मता से योग्य होता है तब मैं उसको प्रेम से उपदेश करता हूं वह भी प्रेम से पूछके निस्सन्देह होकर आनन्दित होजाता है ‡ अब जो राजा शिवप्रसादजी ने स्वामी विशुद्धानन्दजी की सम्मति लिखा, ज्येष्ठ महीने में निवेदनपत्र छपवा के प्रसिद्ध किया है उसी के उत्तर में यह पुस्तक है ॥

इसमें जहां २ (रा०) चिन्ह आवे वहां २ राजा शिवप्रसादजी का और जहां २ (स्वा०) आवे वहां २ मेरा लेख जानना चाहिये ।

रा०—जितना महाराजजी के मुखारविन्द से सुना था बड़े सन्देह का कारण

---

* जिसके आत्मा में और, और जिसके बाहर और होवे वह छली कहाता है।

† जो जिस बात के समझने और जिस काम के करने में सामर्थ्य नहीं रखता वह उसका अधिकारी नहीं हो सकता ॥

‡ कोई भी वैद्य जबतक रोगी के आँखों की पीड़ा सोजा और मलीनता दूर नहीं कर देता तबतक उसको दिखला भी नहीं सकता परन्तु जिसके नेत्र ही फूटगये हैं उसको कुछ भी दिखलाने का उपाय नहीं है ।

हुआ निवृत्त्यर्थ पत्र लिखा महाराजजी ने कृपा करके उत्तर दिया उसे देख मेरा सन्देह और भी बढ़ा महाराजजी के लिखे अनुसार ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका मंगा के पृष्ठ ९ से ८८ तक देखा विचित्र लीला दिखाई दी आधे २ वचन जो अपने अनुकूल पाये ग्रहण किये हैं शेषार्द्ध को जो प्रतिकूल पाये परित्याग * उन आधे अनुकूल में भी जो कोई शब्द अपने भाव से विरुद्ध देखे उनके अर्थ पलट दिये मनमाने लगा लिये † परन्तु आपने याज्ञवल्क्यजी का यह वाक्य आधा ही अपना उपयोगी समझ क्यों लिखा ? क्या इसीलिये कि शेषार्द्ध वादी का उपयोगी है ।

स्वा०—क्या मेरी बात ही संदेह की बढ़ानेहारी है उनकी अल्प समझ और आलस्य नहीं है और यह भी सच है कि जब २ अविद्वान् होकर विद्वान् के बनाये ग्रंथ को देखने लगता है तब २ काच के मंदिर में प्रविष्ट हुए श्वान के समान भूंस २ सुख के बदले दुःख ही पाया करता है ॥

विदित हो कि जहां जितने वाक्य के भाग के लिखने की योग्यता हो उतना ही लिखना उचित होता है न अधिक न न्यून, जिसलिये यह वेदभाष्य की भूमिका है इसलिये उस वाक्यसमूह में से जितना वेदों का उपयोगी लिखना उचित था उतना ही लिखा है जो इतिहासादि में से जिस किसी की व्याख्या करनी होती तो वहां उस २ भाग का लिखना भी योग्य था । प्रकरण विरुद्ध लिखना विद्वानों का काम नहीं

---

* देखिये राजाजी की अद्भुत लीला मैंने जो वेदार्थ के अनुकूल लिखा है उस को मेरे अनुकूल और जो वेदार्थ प्रकरण के प्रतिकूल का त्याग किया है उसको मेरे प्रतिकूल समझते हैं इसीलिये राजाजी विद्यारहस्य को कुछ भी नहीं समझते हैं क्योंकि उनको भी ऐसा ही करना पड़ता है ।

† जैसी राजाजी की समझ है वैसी किसी छोटे विद्यार्थी की भी नहीं हो सकती क्योंकि जो व्याख्येय शब्दार्थ के विरुद्ध का छोड़ना और अनुकूल का ग्रहण करना सब को योग्य होता है उस २ को वे उलटा समझते हैं और फिर कोई उदाहरण भी नहीं लिखते कि इसका अर्थ उलटा वा मनमाना किया क्या ज्वरयुक्त मनुष्य के लिये कुपथ्य का त्याग और सुपथ्य का ग्रहण करना वैद्य का दोष है । और मैंने तो अपनी समझ के अनुसार जो कुछ लिखा है सो सब शास्त्रानुकूल ही है उसको उलटा वा मनमाना लगा लेना जो समझते हैं यह उनकी समझ का दोष है ॥

* सब विद्वान् इस बात को निश्चित जानते हैं कि पदों का पद, वाक्यों का वाक्य, प्रकरणों का प्रकरण और ग्रंथों का ग्रंथों ही के साथ सम्बन्ध होता है। जब ऐसा है तब राजाजी को अपनी बात की पुष्टि के लिये सब पद, सब वाक्य, सब प्रकरण और सब ग्रथों का प्रमाणार्थ एकत्र लिखना उचित हुआ, क्योंकि यह उन्हीं की प्रतिज्ञा है † कि आधा छोड़ना और आधा लिखना किसी को योग्य नहीं और जो राजाजी संपूर्ण का लिखना उचित समझते हैं, सो यह बात अत्यन्त तुच्छ और असम्भव है। ऐसी बात कोई बालबुद्धि मनुष्य भी नहीं कह सकता। देखिये फिर यही उनकी अविद्वत्ता उलटा उनको उन्हीं मिथ्यादोषों में पकड़कर गिराती रहती है अर्थात् जो मिथ्या दोष वे मेरे लेख पर देते हैं उन्हीं में आप डूबे हैं ॥

यहां जब कोई मनुष्य राजाजी से पूछेगा कि आप जो स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी की बनाई भूमिका में दोष देते हैं वही आप के (अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः) इस लेख में भी आते हैं। इसकी वाक्यावली ‡ तो ऐसी है (अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः। जङ्घन्यमाना अपि यन्ति मूढा अन्धेनैवनीयमाना यथाऽन्धाः) फिर आपने इस वाक्यावली में से पूर्व के तीन भाग छोड़, चौथे भाग को क्यों लिखा ? तब राजासाहब घबड़ा कर मौन ही साध जायँगे, क्योंकि वे वाक्यावली में से प्रकरणोपयोगी एक ही भाग का लिखना उचित नहीं समझते चाहे प्रकरणोपयोगी हो वा न हो, किन्तु पूरी वाक्यावली लिखना योग्य समझते हैं + जो ऐसा न समझते तो (एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्श्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्या-

---

* चेत करना चाहिये यह उलटी समझ राजाजी की है कि जो अनेक वाक्यों को एक वाक्य समझना।

† ऐसा असंभव वचन किसी विद्वान् के मुख से नहीं निकल सकता है और न हाथ से लिखा जा सकता है।

‡ जैसे कोई प्रमत्त अर्थात् पागल पगड़ी पग पर और जूते शिरपर धरता है वैसा काम विद्वान् कभी नहीं कर सकता।

+ मेरी प्रतिज्ञा तो यह है कि जहां जितना लिखना योग्य हो वहां उतना ही लिखना।

ख्यानानि व्याख्यानानीष्टंगं हुतमाशित पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि) इस वाक्य समुदाय को स्वामीजी ने नहीं लिखा, यह मिथ्या दोष क्यों लगाते पर विचारे क्या करें उन्होंने न कभी किसी से वाक्य का लक्षण सुना और न पढ़कर जाना है, जो सुना वा जाना होता तो (एवं वा०) इससे ले के (निःश्वसितानि) इस अनेक वाक्य के समुदाय को एक वाक्य क्यों समझते * देखिये यह महाभाष्य में वाक्य का लक्षण लिखा है (एकतिङ्वाक्यम्) जिस के साथ एक तिङन्त के प्रयोग का सम्बन्ध हो वह वाक्य कहाता है जैसे (एवंवा अरेऽस्य महतो भूतस्य विभोः परमेश्वरस्य साक्षाद्वा परम्परा सम्बन्धादेतत्सर्वं वक्ष्यमाणमनेकवाक्यवाच्यं निःश्वसितमस्तीति) । एक और (पूर्वोक्तस्य सकाशादृग्वेदो निःश्वसितोऽस्तीति) दूसरा वाक्य है इसी प्रकार इस कण्डिका में २० वाक्य तो पठित हैं और आकांक्षित वाक्य (त्वं विद्धि) इत्यादि ऊपर से और चकार से इन्हीं के अविरुद्ध अपठित उपयोगी अनेक अन्य वाक्य भी अन्वित होते हैं । क्या जिनको वाक्य का बोध न हो उनको पदार्थ और वाक्यार्थ का बोध जिन को पदार्थ और वाक्यार्थ का बोध न हो उन को प्रकरणार्थ और ग्रंथ के पूर्व पदार्थ का बोध होने की आशा कभी हो सकती है ? † इसीलिये जो राजाजी को दूसरे पत्र में मैंने लिखा है सो बहुत ठीक है कि इससे मुझ को निश्चित हुआ कि राजाजी ने वेदों से लेके पूर्वमीमांसा पर्य्यन्त विद्या पुस्तकों में से किसी भी पुस्तक के शब्दार्थ सम्बन्धों को जाना नहीं है ‡ इसलिये उन को मेरी बनाई भूमिका का अर्थ भी ठीक २ विदित न हुआ ॥

---

* जो राजाजी विद्या में वास कर अविद्या से पृथक् होते तो उन के मुख से ऐसी असंभव बात कभी न निकलती ।

† राजाजी ने समझा होगा कि मैं बड़ा बुद्धिमान् हूं । हां (अन्धानां मध्ये काणो राजा) यहां इस न्याय के तुल्य तो चाहे कोई समझ लेवे ।

‡ ईश्वरोक्त चार वेद स्वतः प्रमाण और ब्रह्मा से लेके जैमिनि पर्य्यन्त ऋषि मुनि और ऐतरेय ब्राह्मण से लेके पूर्वमीमांसा पर्यन्त ग्रंथों की गणना से कोई भी आर्ष पुस्तक पढ़ना बाकी नहीं रहता कि जिस का परतःप्रमाण ग्रहण न हो सके क्योंकि ग्रंथकारों में जैमिनि सब के पश्चात् हुए हैं और पुस्तकों में पूर्वमीमांसा सब से पीछे बनाया है इसलिये जो राजाजी ने नोट में (स्वामीजी ने पूर्वमीमांसा पर्यंत पढ़ा होगा) लिखा है सो भ्रम से ही है ॥

क्या अब जिसको थोड़ीसी भी बुद्धि होगी वह राजासाहब को शास्त्रों के तात्पर्यार्थ ज्ञानशून्य जानने में कुछ भी शङ्का रख सकता है, यहां चोर कोटपाल को दंडे यह कहानी चरितार्थ होती है कि जो (अन्धेनैवनीयमाना यथाऽन्धाः) के समान स्वयं राजाजी और उनके विचारानुकूल चलने वाले होकर भ्रम से इसके अर्थ को मेरी बनाई भूमिका और मेरे उपदेश को मानने हारे पर झोंक देते हैं। क्या यह उलट पलट नहीं है ! । इससे मैं सब आर्यसज्जनों को विदित करता हूं कि जो अपना कल्याण चाहें वे उनके व्यर्थ वाक्याडम्बर जाल में बद्ध हो अपने मनुष्यजन्म के धर्मार्थ काम मोक्ष फलों से रहित होकर दु खदुर्गन्धसागररूप घोर नरक में गिरकर चिरकाल दारुण दुःख भोग न करें और सर्वानन्दप्रद वेद के सत्यार्थप्रकाश में स्थिर होकर सर्वानन्दों का भोग न छोड़ बैठें, अब जो स्वामी विशुद्धानन्दजी की पक्षपात रहित विद्वत्ता की परीक्षा बाकी है सो करनी चाहिये ॥

रा०—श्रीमत्पण्डितवर * बालशास्त्रीजी तो बाहर गये हैं परमपूजनीय जगद्गुरु † श्रीस्वामी विशुद्धानन्दजी के चरणों में पहुंच जा पत्र और उत्तरों को देखकर बहुत हंसे ‡ और पिछले उत्तर पर जिस में इन दोनों महात्माओं का नाम है कुछ लिखवा भी दिया स्वामी विशुद्धानन्दजी का लिखवाया राजा साहब के प्रश्नों का उत्तर दयानन्द से नहीं बना इति ।

स्वा०—जिनका पक्षी पक्षपातान्धकार से विचारशून्य हो उनके साक्षी तत्सदृश क्यों न हों क्या यथा बुद्धि कुछ विद्वान् होकर स्वामी विशुद्धानन्दजी को योग्य था कि ऐसे अशास्त्रवित् अव्युत्पन्न व्यर्थ वैतण्डिक मनुष्य के अत्यन्त अयुक्त लेख पर विना सोचे समझे सम्मति लिख देवें और इससे सजातीयप्रवाहपतन न्याय करके यह भी विदित हुआ कि स्वामी विशुद्धानन्दजी भी राजाजी के तुल्यत्व की उपमा के योग्य हैं। मैं स्वामी

---

* काशी के पंडितों में तो बालशास्त्रीजी किसी प्रकार श्रेष्ठ हो सकते हैं भूगोलस्थ पंडितों में नहीं ।

† जगत् में जो २ उनके शिष्यवर्ग में हैं उन २ के परमपूजनीय और गुरु होंगे सब के क्योंकर हो सकते हैं ।

‡ जो कुछ भी पत्रों के अभिप्राय को समझते तो हास करके अयोग्यपत्र पर सम्मति क्यों लिख बैठते ॥

विशुद्धानन्दजी को चिताता हूं कि आगे कभी ऐसा निर्बुद्धिता का काम न करें * भला मैंने तो राजाजी को संस्कृत विद्या में अयोग्य जानकर लिख दिया है कि आप ने जिसलिये वेदादि विद्या के पुस्तकों में से एक का भी अभ्यास नहीं किया है जो आप को उत्तर ग्रहण की इच्छा हो तो मेरे पास आके सुन समझ कर अपनी बुद्धि के योग्य ग्रहण करो, आप दूर से वेदादि विषयक प्रश्न करने और उत्तर समझने योग्य नहीं हो सकते। इसीलिये उनको लिख के यथोचित उत्तर न भेजे और न भेजूंगा यह बात भी मेरे दूसरे पत्र से प्रसिद्ध है कि जो वे वेदादिशास्त्रों में कुछ भी विद्वान् होते तो मेरी बनाई भूमिका का कुछ तो अर्थ समझ लेते † न ऐसी किसी की योग्यता है कि अंधे को दिखला सके यह भी मैं ठीक जानता हूं कि स्वामी विशुद्धानंदजी भी वेदादि शास्त्रों में विद्वान् नहीं किन्तु नवीनटीकानुसार दश उपनिषद् शारीरक और पूर्व-मीमांसा सूत्र और प्राचीन आर्षग्रन्थों से विरुद्ध कपोलकल्पित तर्कसंग्रहादि ग्रंथोंका अभ्यास तो किया है परन्तु वे भी नशा से ‡ विस्मृत होगए होंगे तथापि उनका संस्कार-मात्र तो ज्ञान रहा ही होगा इसलिये वे संस्कृत पदवाक्य प्रकरणार्थों को यथाशक्ति जान सके हैं परन्तु न जाने उन्होंने राजाजी के अयोग्य लेख पर क्योंकर साक्षी लिखी अस्तु। जो किया सो किया अब आगे को वे वा बालशास्त्रीजी जिसके उत्तर वा प्रश्नों पर हस्ताक्षर करके मेरे पास अपनी ओर से भेज दिया करें और यह भी समझ रक्खें कि जो प्रश्नोत्तर उनके हस्ताक्षरयुक्त आवेंगे वे उन्हीं की ओर से समझे जावेंगे जैसा कि यह निवेदनपत्र का लेख स्वामी विशुद्धानन्दजी की ओर से समझा गया है। इसीलिये वे तीनों स्वामी सेवक मिलकर प्रश्नों का विचार शुद्ध लिख कर मुंशी बख्तावरसिंहजी के पास भेज दिया करें मुंशीजी आप की ओर से यह लेख है वा नहीं इस निश्चय के लिये पत्रद्वारा आप से संमतिपत्र मंगवा के मेरे पास भेज

---

* जो कोई विना विचारे कर बैठता है उसको बुद्धिमान् प्राज्ञ नहीं कहते।

† यह तो सच है कि जो मनुष्य योग्य होकर समझना चाहता है वह समझ भी सकता है।

‡ सुना है कि स्वामी विशुद्धानन्दजी भांग और अफीम का सेवन करते हैं जो ऐसा है तो अवश्य उनको विद्या का स्मरण न रहा होगा जो मादक द्रव्य होते हैं वे सब बुद्धिनाशक होते हैं इससे सबको योग्य है कि उनका सेवन कभी न करें।

दिया करेंगे और मेरा लेख भी मेरे हस्ताक्षर सहित अपने हस्ताक्षर करके पत्र सहित उन के पास भेज दिया करेंगे वे लोग राजाजी आदि को समझाया करें और वे आप से मेरे लेखाभिप्राय को समझ लिया करें जो इस पर भी आप लोग परस्पर विचार करने में प्रवृत्त न होंगे तो क्या सब सज्जन लोग आप लोगों को भी अयोग्य न समझ लेंगे क्योंकि जो स्वपक्ष के स्थापन और परपक्ष के खण्डन में प्रवृत्त न होकर केवल विरोध ही मानते रहैं वे अयोग्य कहाते हैं। इसलिये मैं सब को सूचना करता हूं कि जो मेरे पक्ष से विरुद्ध अपना पक्ष जानते हों तो प्रसिद्ध होकर शास्त्रार्थ क्यों नहीं करते? और टट्टी की आड़ में स्थित होकर ईंट पत्थर फेंकने वाले के तुल्य कर्म करना क्यों नहीं छोड़ते! और जो विरुद्ध पक्ष नहीं जानते हों तो अपने पक्ष को छोड़ मेरे पक्ष में प्रवृत्त होकर प्रीति से इसी पक्ष का प्रचार करने में उद्यत क्यों नहीं होते? * जो ऐसा नहीं करके दूर ही दूर रह कर झूठे गाल बजाने और जैसे मेरे काशी से चले आये पर राजाजी के पत्र पर व्यर्थ हस्ताक्षर करने से उन ने अपनी अयोग्यता प्रसिद्ध कराई वैसे जो वे मुझ से शास्त्रार्थ करेंगे तो प्रशंसित भी हो सकते हैं। ऐसा किये विना क्या वे लोग बुद्धिमान् धार्मिक विद्वानों के सामने असाननीय और अप्रतिष्ठित न होंगे? ॥ जो इस में एक बात न्यून रही है कि बालशास्त्री जी भी इस पर अपनी सम्मति लिखते तो उनको भी राजा शिवप्रसाद और स्वामी विशुद्धानन्दजी के साथ दक्षिणा मिलजाती। कहिये राजाजी आप अपनी रक्षा के लिये स्वामी विशुद्धानन्दजी के चरणों में पहुंच कर पत्र दिखा सम्मति लिखा पुस्तक छपाकर इधर उधर भेजने से भी न बच सके तो आप के जाट, खाट और कोल्हू: लौट कर आप ही के शिर पर चढ़े वा नहीं, अब इस बोझ के उतारने के लिये आप को योग्य है कि बालशास्त्रीजी के चरणों में भी गिर कर बचने का उपाय कीजिये और आप अपने विजय के लिये स्वामी-विशुद्धानन्दजी और बालशास्त्रीजी को प्राड्विवाक अर्थात् बारिस्टर करना भी मत छोड़िये, अथवा उत्तम तो यह है कि वे दोनो आप को ढाल बना कर न लड़ें किन्तु सन्मुख होकर शास्त्रार्थ करें, इसी में उन की शोभा है। अन्यथा नहीं, परन्तु मैं आप और उन को निश्चित कहता हूं कि सब मिलकर कितना ही करो जब तक

---

* उन को अवश्य योग्य है कि सत्य के आचरण और असत्य के छोड़ने में अति दृढोत्साह युक्त हो के निन्दा स्तुति हानि लाभ आदि की प्राप्ति में शोक और हर्ष कभी न करें।

कोई मनुष्य झूठ छोड़, सत्यमत का ग्रहण नहीं करता, तबतक अपना और दूसरे का विजय कभी नहीं कर सकता और न करा सकता है क्या दूसरे की वृथा प्रशंसा से हर्षित होकर स्वामी विशुद्धानन्दजी का बहुत हंसना बालकों का खेल नहीं है ! और जो कोई अपनी योग्यता के सदृश वर्त्तमान न करे वह संशय में मग्न होकर विनष्ट क्योंकर न होवे ॥

अब मैं सूचना करता हूं कि बुद्धिमान् आर्य लोग पची राजाजी और स्वामी विशुद्धानन्दजी के हास्यास्पद लेख को देख उस पर विश्वास कर इस (कास्ता: क निपतिता:) महाभाष्योक्त वचनार्थ के सदृश होकर धर्मफल आनन्द से छूटकर दुर्गन्ध गढ़े और दुःखसागर में जा न गिरें ।

रा०—हम केवल वेद की संहितामात्र मानते हैं एक ईशावास्य उपनिषद् संहिता है और सब उपनिषद् ब्राह्मण हैं । ब्राह्मण हम कोई नहीं मानते सिवाय संहिता के हम और कुछ नहीं मानते हैं ॥

स्वा०—जैसा यह राजाजी का लेख है वैसा मैंने नहीं कहा था, किन्तु जैसा नीचे लिखा है वैसा कहा गया था । तद्यथा—

रा०—आपका मत क्या है ।

स्वा०—वैदिक ।

रा०—आप वेद किसको मानते हैं ।

स्वा०—संहिताओं को ।

रा०—क्या उपनिषदों को वेद नहीं मानते ।

स्वा०—मैं वेदों में एक ईशावास्य को छोड़ के अन्य उपनिषदों को नहीं मानता, किन्तु अन्य सब उपनिषद् ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं । वे ईश्वरोक्त नहीं हैं ।

रा०—क्या आप ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते ।

स्वा०—नहीं, क्योंकि जो ईश्वरोक्त है वही वेद होता है जीवोक्त को वेद नहीं कहते, जितने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं वे सब ऋषि मुनि प्रणीत और संहिता ईश्वरप्रणीत हैं जैसा ईश्वर के सर्वज्ञ होने से तदुक्त निर्भ्रान्त सत्य और मत के साथ स्वीकार करने योग्य होता है वैसा जीवोक्त नहीं हो सकता क्योंकि वे सर्वज्ञ नहीं परन्तु जो २ वेदानुकूल ब्राह्मण ग्रन्थ हैं उनको मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं । वेद स्वतःप्रमाण और ब्राह्मण परतःप्रमाण हैं इससे जैसे वेदविरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों का त्याग होता है

वैसे ब्राह्मण ग्रन्थों से विरुद्धार्थ होने पर भी वेदों का परित्याग कभी नहीं हो सकता, क्योंकि वेद सर्वथा सबको माननीय ही हैं यह मेरे पत्र का लेख उन के भ्रमजाल निवारण का हेतु विद्यमान ही था परंतु मेरा लेख क्या कर सकता है जो राजाजी मेरे लेख को समझने की विद्याही नहीं रखते तो क्या इसमें राजाजी का दोष नहीं है ? ॥

रा०—वादी कहता है * जो संहिता ईश्वरप्रणीत है तो ब्राह्मण भी ईश्वरप्रणीत हैं ॥

स्वा०—देखिये राजाजी की मिथ्या आडम्बरयुक्त लड़कपन की बात को जैसे कोई कहे कि जो पृथिवी और सूर्य ईश्वर के बनाये हैं तो घड़ा और दीप भी ईश्वर ने रचे हैं ॥

रा०—और जो ब्राह्मण ग्रन्थ सब ऋषि मुनि प्रणीत हैं तो संहिता भी ऋषि मुनि प्रणीत हैं ॥

स्वा०—यह भी ऐसी बात है कि जो कोई कहे कि ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रणीत है तो ऋग्यजुः साम और अथर्व चारों वेद भी उन्हीं के प्रणीत हैं ॥

रा० वादी को आप अपना प्रतिध्वनि समझिये † ।

स्वा०—देखिये राजाजी की अविद्या के प्रकाश को, क्या प्रतिवादी का प्रतिध्वनि वादी कभी हो सकता है क्योंकि जैसा शब्द और उसमें जैसे पद अक्षर और मात्रा होती हैं वैसा ही प्रतिध्वनि सुनने में आता है विपरीत नहीं कोई बालबुद्धि भी नहीं कह सकता कि वादी अपने मुख से प्रतिवादी ही के शब्दों को निकाले विरुद्ध नहीं जबतक प्रतिवादी के पक्ष से विरुद्ध पक्ष प्रतिपादन नहीं करता तबतक वह उसका वादी कभी नहीं हो सकता जैसे कुआ में से प्रतिध्वनि सुना जाता है क्या वह वक्ता के शब्द से विरुद्ध होता है ? ।

---

* क्या विद्या और सुशिक्षारहित मनुष्य प्रश्न और उत्तर करना कभी जान सकता है। जब राजाजी वाद के लक्षणयुक्त ही नहीं हैं तो वादी क्योंकर बन सकते हैं।

† जो मैं राजाजी के सदृश होता तो वादी को अपना प्रतिध्वनि समझता क्योंकि प्रतिध्वनि, ध्वनि से विरुद्ध कभी नहीं हो सकती और वादी प्रतिवादी से अविरुद्ध कभी नहीं हो सकता ।

रा०—आप ने लिखा वेदसंहिता स्वतःप्रमाण और ब्राह्मण परतःप्रमाण हैं वादी कहता है कि जो ऐसा है तो ब्राह्मण ही स्वतःप्रमाण हैं आप का संहिता परतःप्रमाण होगा ॥

स्वा०—क्या यह उपहास की बात नहीं है जैसे कोई कहै कि जो सूर्य्य और दीप स्वतः प्रकाशमान हैं तो घटपटादि भी स्वतः प्रकाशमान हैं।

रा०—आपने लिखा कि मेरी बनाई हुई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के नव ६ पृष्ठसे लेके ८८ अठ्ठासी के पृष्ठ तक वेदोत्पत्ति वेदों का नित्यत्व और वेदसंज्ञा विचार विषयों को देख लीजिये निश्चय होगा सो महाराज निश्चय के पलटे मैं तो और भी भ्रांति में पड़गया मुझे तो इतना ही प्रमाण चाहिये कि आपने संहिता को माननीय मानकर ब्राह्मण का क्यों परित्याग किया और वादी तो संहिता जैसा ब्राह्मण को वेद मान जो आप ने वेद के अनुकूल लिखा अपने अनुकूल और जो ब्राह्मण के प्रतिकूल लिखा उसे संहिता के भी प्रतिकूल समझना है ॥

स्वा०—यह सच है कि जो अविद्वान् होकर विद्वत्ता का अभिमान करे वह अपनी अयोग्यता से सुख छोड़कर दुःख क्यों न पावे ॥ मैंने वेदों को स्वतःप्रमाण मानने और ब्राह्मणों को परतःप्रमाण मानने में कारण इस भ्रमोच्छेदन के इसी पृष्ठ में आगे लिखे हैं। क्या बांचते समय अकस्मात् बुद्धि और आंखें अन्धकारावृत होगये थे परन्तु जो २ वेदानुकूल ब्राह्मणग्रन्थ हैं उन को मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं वेद स्वतःप्रमाण और ब्राह्मण परतःप्रमाण हैं इससे जैसे वेदविरुद्ध ब्राह्मणग्रन्थों का त्याग होता है वैसे ब्राह्मणग्रन्थों से विरुद्ध होने पर भी वेदों का परित्याग नहीं हो सकता क्योंकि वेद सर्वथा सब को माननीय हैं।

रा०—तस्माद्यज्ञात् अजायत अर्थात् उस यज्ञ से वेद उत्पन्न हुए पृष्ठ १० पङ्क्ति २६ में आप शतपथ आदि ब्राह्मण का प्रमाण देकर यह सिद्ध करते हैं कि यज्ञ विष्णु और विष्णु परमेश्वर।

स्वा०—जो राजाजी कुछ भी संस्कृत पढ़े होते तो सन्निपाती के सदृश चेष्टा करके भ्रमजाल में न पड़ते क्योंकि तच्छब्द सर्वत्र पूर्वपरामर्शक होता है इसी से मैंने (सहस्रशीर्षा पुरुषः) यहां से लेके (ग्राम्याश्चये) यहांतक जो छः मन्त्रों से प्रतिपादित निमित्त कारण परमात्मा पूर्वोक्त है उस का आमर्ष अर्थात् अनुकर्षण करके अन्वित किया है देखो इसी के आगे भूमिका के पृष्ठ ६ पंक्ति १७ तस्म यज्ञात्स० तस्माद्यज्ञात्सच्चिदानन्दादि

लक्षणात्पूर्णात्पुरुषात् सर्वहुतात् सर्वपूज्यात् सर्वशक्तिमतः परब्रह्मणः (ऋचः) ऋग्वेदः (यजुः) यजुर्वेदः (सामानि) सामवेदः (छन्दांसि) अथर्ववेदश्च (जज्ञिरे) चत्वारो वेदास्तेनैव प्रकाशिता इति वेद्यम् । यह सर्वहुत और यज्ञविशेषण पूर्ण पुरुष के हैं (तस्मात्) अर्थात् जो सब का पूज्य सर्वोपास्य सर्वशक्तिमान् पुरुष परमात्मा है उससे चारो वेद प्रकाशित हुए हैं इत्यादि से यहां वेदों ही के प्रमाण से चार वेदों को स्वतःप्रमाण से सिद्ध किया है यद्यपि यहां यज्ञ शब्द भी पूर्ण परमात्मा का विशेषण है तथापि जैसा मैंने अर्थ किया है वैसा ब्राह्मण में भी है इस साक्षी के लिये (यज्ञो वै विष्णुः) यह वचन लिखा है और जो ब्राह्मण में मूल से विरुद्ध अर्थ होता तो मैं उसका वचन साक्षी के अर्थ कभी न लिखता जो इस प्रकार से पद, वाक्य, प्रकरण और ग्रन्थ की साक्षी आकाङ्क्षा योग्यता आसत्ति और तात्पर्यार्थ को पक्षी राजाजी और स्वामी विशुद्धानन्दजी जानते वा किसी पूर्ण विद्वान् की सेवा करके वाक्य और प्रकरण के शब्दार्थ सम्बन्धों के जानने में तन मन धन लगा के अत्यन्त पुरुषार्थ से पढ़ते तो यथावत् क्यों न जान लेते * ॥

(रा०–पृष्ठों को कुछ उलट पलट किया तो विचित्र लीला दिखाई देती है आप पृष्ठ ८१ पङ्क्ति २ में लिखते हैं कात्यायन ऋषि ने कहा है कि मन्त्र और ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम वेद है पृष्ठ ५२ में लिखते हैं प्रमाण ८ हैं और फिर पृष्ठ ५३ में लिखते हैं चौथा शब्दप्रमाण आप्तों के उपदेश पांचवां ऐतिह्य सत्यवादी विद्वानों के कहे वा लिखे उपदेश तो आप के निकट कात्यायन ऋषि आप्त और सत्यवादी विद्वान् नहीं थे) † ॥

स्वा० इस का प्रत्युत्तर मेरी बनाई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ ८० पङ्क्ति २८ से लेके पृष्ठ ८८ अठासी तक में लिख रहा है जो चाहे सो देख लेवे और जो वहां (एवं तेनानुक्तत्वात्) इस वचन का यही अभिप्राय है कि (मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्) यह वचन कात्यायन ऋषि का नहीं है किन्तु किसी धूर्तराट् ने कात्यायन ऋषि के नाम से बनाकर प्रसिद्ध कर दिया है जो कात्यायन ऋषि का कहा होता तो

* प्रसिद्ध है कि जो कोदों देके पढ़ते हैं वे पदार्थों को यथावत् कभी नहीं जान सकते ।

† वे तो आप्त विद्वान् थे परन्तु जिसने उनके नाम से वचन रचकर प्रसिद्ध किया वह तो अनाप्त अविद्वान् ही था ।

सब ऋषियों की प्रतिज्ञा से विरुद्ध न होता * क्या आप जैसा कात्यायन को आप्त मानते हैं वैसा पाणिनि आदि ऋषियों को आप्त नहीं मानते जो कभी आप्त मानते हो तो पाणिनि आदि आप्तों की प्रतिज्ञा से विरुद्ध कात्यायन ऋषि क्यों लिखते और जो कहो कि हम इस वचन को कात्यायन का ही मानेंगे तो ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि आप पाणिनि आदि अनेक ऋषियों के लेख का तिरस्कार कर एक को आप्त कैसे मान सकते हो और जो उनको भी आप्त मानते हो तो मन्त्रसंहिता ही वेद है उनके इस वचन को मानकर तद्विरुद्ध ब्राह्मण को वेद संज्ञा के प्रतिपादक वचन को क्यों नहीं छोड़ देते क्योंकि एक विषय में परस्पर विरोधी दो वचन सत्य कभी नहीं हो सकते और जो सैकड़ों आप्त ऋषियों को छोड़कर एक ही को आप्त मानकर सन्तुष्ट रहता है वह कभी विद्वान् नहीं कहा जा सकता ॥

रा०—आप लिखते हैं कि ब्राह्मण में जमदग्नि कश्यप इत्यादि जो लिखे हैं सो देहधारी हैं अतएव वह वेद नहीं और संहिता में शतपथब्राह्मण के अनुसार जमदग्नि का अर्थ चक्षु और कश्यप का अर्थ प्राण है अतएव वह वेद है ॥

स्वा०—ब्राह्मणों में जमदग्नि आदि देहधारियों का नाम यों है कि जहां २ ब्राह्मण ग्रन्थों में उनकी कथा लिखी है वहां २ जैसे देहधारी मनुष्यों का परस्पर व्यवहार होता है वैसा उनका भी लिखा है इसलिये वहां देहधारी का ग्रहण करना योग्य है और जहां मनुष्यों के इतिहास लिखने की योग्यता नहीं होसक्ती वहां इतिहास लिखने का भी सम्भव नहीं हो सकता जो वेदों में इतिहास होते तो वेदादि और सब से प्राचीन नहीं हो सकते क्योंकि जिस का इतिहास जिस ग्रन्थ में लिखा होता है वह ग्रन्थ उस मनुष्य के पश्चात् होता है जब कि वेदों में (त्र्यायुषं जमदग्ने०) इत्यादि मन्त्रों की व्याख्या पदार्थविद्यायुक्त होनी ही उचित है इस से उनमें इतिहास का होना सर्वथा असम्भव है जिसलिये जैसा मूलार्थ प्रतीत होने के कारण जमदग्नि आदि शब्दों से चक्षु आदि ही अर्थों का ग्रहण करना योग्य है वैसा ही ब्राह्मणग्रन्थों और निरुक्त आदि में लिखा है इसलिये यह मैंने अपने किये अर्थों के सत्य होने के लिये साक्ष्यर्थमात्र लिखा है। राजाजी-जो इस बात को जानते और इन ग्रन्थों को पढ़े होते तो भ्रमजाल में फँसकर दुःखित न होवे ॥

रा०—उस में भी क्या उपनिषद् संज्ञी और इतिहासपुराणादि संज्ञा है? अथवा ऋग्वेदादि क्रमानुसार उनका संज्ञी वा संज्ञा है? ॥

* हज़ारह आप्तों का एक अविरुद्ध मत होता है मूर्ख दो का भी एकमत होना कठिन है।

स्वा०—इस का उत्तर यह है कि एक ईशावास्य उपनिषद् तो यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय होने से वेद है और केन से ले के वृहदारण्यकपर्यन्त ९ नव उपनिषद् ब्राह्मणान्तर्गत होने से उन की भी इतिहासादि संज्ञा ब्राह्मणानीतिहासान्० इस पूर्वोक्त वचन से है इस से (एवं वाअरे०) इस वचन में निमित्तकारण कार्यसम्बन्ध होने से संज्ञा संज्ञीसम्बन्ध नहीं घट सकता परन्तु राजासाहब के सदृश अविद्वान् तो (मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी) ऐसा लिखने वा कहने में कुछ भी भययुक्त वा लज्जावान् नहीं होते * ॥

रा०—आप लिखते हैं कि ब्राह्मण वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण के योग्य तो हैं यदि आप इतना और मानलें कि सम्पूर्ण ब्राह्मणों का प्रमाण संहिता के प्रमाण के तुल्य है ॥

स्वा०—अविद्वान् को कभी विद्या रहस्य के समझने की योग्यता नहीं हो सकती क्या ऐसा कोई विद्वान् भी सिद्ध कर सकता है कि व्याख्या के अनुकूल होने से मूल का प्रमाण और प्रतिकूल होने से अप्रमाण और व्याख्या के मूल से प्रतिकूल होने से प्रमाण और अनुकूल होने से अप्रमाण होवे इसलिये मन्त्र भाग मूल होने से ब्राह्मण ग्रन्थों से अनुकूल वा प्रतिकूल हो तथापि सर्वथा माननीय होने के कारण स्वतःप्रमाण और ब्राह्मणग्रन्थ व्याख्या होने से मूलार्थ से विरुद्ध हो तो अप्रमाण और अनुकूल हो तो प्रमाण होकर माननीय होने के कारण परतःप्रमाण हैं। क्योंकि ब्राह्मणग्रन्थों में सर्वत्र संहिताओं के मंत्रों की प्रतीक धर धर के पद वाक्य और प्रकरणानुसार व्याख्या की है इसलिये मन्त्रभाग मूल व्याख्येय और ब्राह्मण ग्रन्थ व्याख्या है ॥

रा०—आप लिखते हैं तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते । इसका अर्थ सीधा २ यह मान लेवें कि आप के चारों वेद और उन के छओं अङ्ग अपरा हैं जो परा उस से अक्षर में अधिगमन होता है अपना फिरावट का वा अर्थाभास छोड़ दें किमधिकमित्यलम् ।

स्वा०—यहां तक आप का जो ऊटपटांग लेख है उस को कौन शुद्ध कर सकता है

* विद्यावृद्धों ही को अन्यथा कहने और लिखने में शर्म वा भ्रम होता है अविद्यायुक्त बालकों को नहीं ।

क्योंकि इसी भूमिका के पृष्ठ ४२ पङ्क्ति ३ में 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' इस उपनिषद् के वचन ने आप के सीधे २ अर्थ को टेढ़ा २ कर दिया देखो यमराज कहते हैं कि हे नचिकेता जिस का अभ्यास सब वेद करते हैं उस ब्रह्म का उपदेश मैं तुझ से करता हूं तू सुन कर धारण कर जब ऐसा है तो वेदों अर्थात् मन्त्रभाग में परा विद्या क्यों नहीं। देखो तमीशानं इत्यादि मन्त्र ऋग्वेद। परीत्य भूतानि इत्यादि और ईशावास्य इत्यारभ्य ओं खं ब्रह्म पर्यन्त मन्त्रयुक्त ४० चालीसवांअध्यायस्थ मन्त्र यजुर्वेद। दधन्वेवायदीमनुवोचद्ब्रह्मोति वेरुत्तत्। इत्यादि मन्त्र सामवेद महद्यक्षं इत्यादि मन्त्र अथर्ववेद में हैं जब वेदों में हजारह मन्त्र ब्रह्म के प्रतिपादक हैं जिन में से थोड़े से मन्त्रों का अर्थ भी मैंने भूमिका पृष्ठ ४३ पङ्क्ति २६ से लेके ३० पङ्क्ति की समाप्ति तक लिख रक्खा है जिसको देखना हो देख लेवे भला इतना भी राजाजी को बोध नहीं है कि वेदों में परा विद्या न होती तो केन आदि उपनिषदों में कहां से आती। मूलं नास्ति कुतः शाखाः। क्या जो परमेश्वर अपने कहे वेदों में अपनी स्वरूप विद्या का प्रकाश न करता तो किसी ऋषि मुनि का सामर्थ्य ब्रह्मविद्या के कहने में कभी हो सकता था? क्योंकि कारण के विना कार्य होना सर्वथा असंम्भव है जो केन आदि नव उपनिषदों को पराविद्या में मानेंगे तो उन से भिन्न आयुर्वेद धनुर्वेद गान्धर्ववेद अर्थवेद और मीमांसादि छः शास्त्र आदि परा विद्या में क्यों नहीं जब न इस वचन में उपनिषद् और न किसी अन्य ग्रन्थ का नाम लिखा है तो कोई उनका ग्रहण कैसे कर सकता है भला कोई राजाजी से पूछेगा कि आपने (यया तदक्षरमधिगम्यते सा पराविद्यास्ति) इस वाक्य से कौन से ग्रन्थों का नाम निश्चित किया है क्या (यया) इस पद से कोई विशेष ग्रन्थ भी आ सकता है और जो मैंने वेदों में परा और अपरा विद्या लिखी है उसको कोई विपरीत भी कर सकता है कभी नहीं इसलिये सब मनुष्यों को योग्य है कि जैसे राजाजी संस्कृत विद्या के वेदादि ग्रन्थों को न पढ़ कर उन्हों में प्रश्नोत्तर किया चाहते और जैसी स्वामी विशुद्धानन्दजी ने विना सोचे समझे सम्मति कर दी है वैसे साहस न करना चाहिये किन्तु उस २ विद्या में योग्य हो के किसी से विचारार्थ प्रवृत्त होना चाहिये॥

प्रश्न—आप ने अपने दूसरे पत्र में राजाजी को लिख कर प्रश्न करने और उत्तर समझने में अयोग्य जान कर लिख के उत्तर देना चाहा न था फिर अब क्यों लिखके उत्तर देते हो? ॥

उत्तर—जो राजाजी स्वामी विशुद्धानन्दजी की सम्मति न लिखाते तो मैं इस पत्र के उत्तर में एक अक्षर भी न लिखता क्योंकि उनको तो जैसा अपने पत्र में लिख चुका हूं वैसा ही निश्चित जानता हूं ॥

प्रश्न—इस संवाद में आप प्रतिपक्षी राजाजी को समझते हो वा स्वामी विशुद्धानन्दजी को ? ॥

उ०—स्वामी विशुद्धानन्दजी को क्योंकि राजाजी तो विचारे संस्कृत विद्या पढ़े ही नहीं उनके सामने मेरा लेख ऐसा होवे कि जैसा बधिर के सामने अत्यन्त निपुण गाने वाले का वीणा आदि बजाना और षड्जादि स्वरों का यथायोग्य आलाप करना होता है ॥

प्र०—जो तुम पक्षी राजाजी को छोड़ कर स्वामी विशुद्धानन्दजी को आगे धरते हो सो यह न्याय की बात नहीं है ? ॥

उ०—यह मुझ वा किसी को योग्य नहीं है कि संस्कृत में कुछ योग्य विद्वान् को छोड़कर अयोग्य के साथ संवाद चलावे न राजाजी को योग्य है कि अपने साक्षी को छोड़ें और स्वामी विशुद्धानन्दजी को भी योग्य है कि अपने शरणागत आये राजाजी की रक्षा से विमुख न हो बैठें * ॥

प्र०—स्वामी विशुद्धानन्दजी वा बालशास्त्रीजी आदि काशी के सब विद्वान् और बुद्धिमान् मिलकर राजाजी का पक्ष लेकर आप से शास्त्रार्थ वा लेख करेंगे तो आप को बड़ा कठिन पड़ेगा ? ॥

उ०—मैं परमेश्वर की साक्षी से सत्य कहता हूं कि जो ऐसा वे करें तो मैं अत्यन्त प्रसन्नता के साथ सब को विदित करता हूं कि यह बात कल होती हो तो आज ही होवे जो ऐसी इच्छा मेरी न होती तो मैं काशी में विज्ञापनपत्र क्यों लगवाता और स्वामी विशुद्धानन्दजी तथा बालशास्त्रीजी को प्रतिपक्षी स्वीकार क्यों करता ॥

प्र०—वे हैं बहुत और आप अकेले हो कैसे संवाद कर सकोगे ? ॥

उ०—इसके होने में कुछ असम्भव नहीं क्योंकि जब सब काशी और अन्यत्र के विद्वान् और बुद्धिमान् लोग अपना अभिप्राय पत्रस्थ कर वा सन्मुख जाके स्वामी विशुद्धानन्दजी वा बालशास्त्रीजी को विदित कराते जायंगे और वे उन लेख वा वचनों को देख सुन उनमें से इष्ट को ले मुझसे सन्मुख वा पत्रद्वारा इन दो बातों में से जिस

---

* यह धार्मिक विद्वानों का काम नहीं है कि जिसको शरणागत लेवें उसे छोड़कर विश्वासघात कर बैठें ॥

में उन की प्रसन्नता हो ग्रहण करके शास्त्रार्थ करें उसी बात में भी उससे शास्त्रार्थ करने में उद्यत हूं परन्तु जैसे मैं इस पुस्तक पर अपना हस्ताक्षर प्रसिद्ध करता हूं वैसे वे भी करें तो ठीक है अन्यथा नहीं ॥

प्र०—सन्मुख होकर शास्त्रार्थ करने में अच्छा होगा वा पत्रद्वारा ? ॥

उ०—सर्वोत्तम तो यह है जो मैं और वे सन्मुख होकर शास्त्रार्थ करें तो शीघ्र सत्य वा झूठ का सिद्धान्त हो सकता है अर्थात् १ महीने से लेके छः महीने तक सब बातों का निर्णय हो सकता है और दूर २ रहकर पत्रद्वारा शास्त्रार्थ करने में ३६ छत्तीस वर्षों में भी पूरा होना कठिन है परन्तु जिस पक्ष में वे प्रसन्न हों उसी में मैं भी प्रसन्न हूं ॥

प्र०—इस शास्त्रार्थ के होने और न होने का क्या फल होगा ॥

उ०—जो अविरोध होने से एक मत होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से सबको परमानन्द होना और न होने पर जो परस्पर विरुद्ध मिथ्या मत में वर्त्तमान मनुष्यों के अधर्म अनर्थ कुकाम और बन्ध के न छूटने से उन के दुःखों का न छूटना फल है ॥

प्र०—शास्त्रार्थ हुए पर भी हठ से आप वा वे विरुद्ध मत न छोड़ें तो छुड़ाने का क्या उपाय है ? ।

उ०—शास्त्रार्थ से पूर्व मैं और वे जिस का पक्ष झूठा हो उस के छोड़ने और जिस का सत्य हो उस के स्वीकार करने के लिये प्रतिज्ञा का पक्के कागज़ पर लेख होकर रजिस्टरी कराकर एक दूसरे को अपने २ पत्र को देने से सम्भव है कि आप अपना २ हठ छोड़ देवें क्योंकि जो न छोड़ेगा तो राजा अपनी व्यवस्था से हठ को छुड़ा सकता है ।

प्र०—जब आप काशी में सब दिन निवास नहीं करते और स्वामी विशुद्धानन्दजी तथा बालशास्त्रीजी वहीं बसते हैं तो सन्मुख में शास्त्रार्थ कैसे हो सकता है ? ।

उ०—मैं यह प्रतिज्ञा करता हूं कि जब वे सन्मुख होकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार करेंगे और इस को सत्य समझ लूगा तब जहां हूंगा वहां से चल के काशी में उचित समय पर पहुंचूंगा कि जिसमें उन को परदेशयात्रा का क्लेश और धनव्यय भी न करना पड़ेगा पुनः वहां यथावत् शास्त्रार्थ होकर सत्यासत्य निर्णय के पश्चात् सब का उपकार भी सिद्ध होगा क्या यह छोटा लाभ है ।

प्र०—जब आप उन से शास्त्रार्थ करके अपना मत सिद्ध किया चाहते और वे नहीं किया चाहते हैं इस का क्या कारण है ? ।

उ०—विदित होता है कि वे अपने मन में जानते हैं कि शास्त्रार्थ करने से हम अपने मत को सिद्ध न कर सकेंगे वा सं० १९२६ के शास्त्रार्थ को देख घबराहट होगी कि दूर ही दूर से ढोल बजाना अच्छा है जो उन को यह निश्चय होता कि हमारा वेदानुसार और स्वामीजी का मत वेदविरुद्ध है तो शास्त्रार्थ किये विना कभी नहीं रहते अथवा जो और कुछ कारण हो तो शास्त्रार्थ करनें में क्यों विलम्ब करते हैं आज से पीछे जो कोई पुराण वा तन्त्र आदि मत वाले मुझ से विरुद्ध पक्ष को लेकर शास्त्रार्थ किया चाहैं वा लिख के प्रश्नोत्तर की इच्छा करें वे स्वामी विशुद्धानन्दजी के और बालशास्त्रीजी के द्वारा ही करें इससे अन्यथा जो करेंगे तो मैं उन का मान्य कभी न करूंगा, हां सन्मुख आ के तो वे स्वयं भी पूछ सकते हैं इससे स्वामी विशुद्धानन्दजी और बालशास्त्रीजी ऐसा न समझे कि हम वेदों में विद्वान् वा सर्वोत्तम पण्डित हैं और कोई अन्य मनुष्य भी ऐसा निश्चय न कर लेवे कि इनसे अधिक पण्डित आर्य्यावर्त्त में दूसरा कोई भी नहीं है हां ऐसा निश्चय करना ठीक है कि काशी में इस समय आधुनिक ग्रन्थाभ्यासकर्त्ता संन्यासियों में स्वामी विशुद्धानन्दजी और गृहस्थों में बालशास्त्रीजी कुछ विशिष्ट विद्वान् हैं मैंने तो संवाद में केवल अनवस्था दोष परिहारार्थ इन दोनों को सन्मुख आर्य्यावर्त्तीय पण्डितों में माने हैं अनुमान है कि उन को अन्य भी मनुष्य ऐसे मानते होंगे इस से अन्य प्रयोजन भी कुछ नहीं, सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी परमेश्वर कृपा करके स्वामी विशुद्धानन्दजी और बालशास्त्रीजी को निर्भय निःशङ्क करे कि जिससे वे मुझ से सन्मुख वा पत्रद्वारा पाषाणादि मूर्त्तिपूजादिमंडन विषयों में शास्त्रार्थ करने में दृढोत्साहित हों जैसे कि मैं उनके खण्डन में दृढोत्साहित हूं ॥

मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुक्रे मासेऽसिते दले ।
द्वितीयायाङ्गुरौवारे भ्रमोच्छेदोह्यलङ्कृतः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वामि-
दयानन्दसरस्वतीनिर्मित आर्यभाषाविभूषितो
भ्रमोच्छेदनोऽयं ग्रन्थः पूर्त्तिमगमत् ॥